महर्षि दयानन्द के सपनों का आर्य समाज

स्वर्गीया श्रीमती सत्यप्रिया स्मारक समिति द्वारा आयोजित अखिल भारतीय निबन्ध प्रतियोगिता में पुरस्कृत तीन निबन्ध।

गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली

प्रकाशक
गोविन्दराम हासानन्द,
४४०८ नई सड़क,
दिल्ली-६
फोन नं० २६४६४३

मूल्य : पांच रुपये

संस्करण
आर्यसमाज स्थापना शताब्दी
१२ अप्रैल १९७५

मुद्रक
एस. नारायण एण्ड सन्स,
(प्रिंटिंग प्रेस)
पहाड़ी धीरज, दिल्ली-६

दो शब्द

मेरे परम स्नेही, दृढ़ आर्य एवं सुयोग्य श्री नवनीतलाल जी एडवोकेट सुप्रीम कोर्ट, एक आदर्श सद्गृहस्थ व्यक्ति हैं। इन्होंने वैदिक-विवाह मर्यादा अनुसार गृहस्थ को आत्मा का सम्बन्ध माना है न कि रूप, यौवन या धन का। यही कारण है कि जीवन काल में ही नहीं अपितु अपनी धर्म-पत्नी के स्वर्गवास होने के बाद भी उनकी स्मृति एवं भावनाओं के अनुसार यज्ञ, दान तथा धर्म के शुभ कार्यों में निरन्तर लगे रहते हैं।

स्वर्गीय बहिन सत्यप्रिया जी की स्मृति में स्थापित स्मारक का कार्य भार जब मुझे आपने सौंपा तब मैंने भी इस कार्य को इसी भावना से सहर्ष स्वीकार किया। मेरे जीवन के ध्येय के अनुसार राष्ट्र तथा समाज के बहुमूल्य-धन युवक युवतियों के जीवनों के "निर्माण" में एक ओर जहाँ सहयोग मिलेगा दूसरी ओर वहाँ एक आदर्श सती साध्वी धर्मात्मा आदर्श गृहस्थ सद्नारी की कीर्ति का उदाहरण भी आधुनिक देवियों के लिए मार्गदर्शक सिद्ध होगा।

हमारा परम सौभाग्य है कि हम सब वैदिक संस्कृति एवं आर्य (हिन्दू) जाति के एक मात्र रक्षक आर्य समाज के सौ गौरवशाली वर्ष पूर्ण होने पर 'शताब्दी' मना रहे हैं इसी सन्दर्भ में स्मारक समिति ने **"महर्षि दयानन्द के स्वप्नों का आर्य समाज कैसे बने"** विषय पर अखिल भारतीय निबन्ध—प्रतियोगिता का आयोजन किया। परम हर्ष का विषय है कि देश के उच्चकोटि के विद्वानों ने अपने निबन्ध लिखकर भेजने का कष्ट किया जिसके लिए सभी लेखकों को हम धन्यवाद देते तथा कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

हम इन वहुमूल्य लेखों को स्थाई साहित्य का रूप देने पर विचार कर ही रहे थे कि आर्य साहित्य के प्रमुख प्रकाशक श्री विजय कुमार जी मालिक गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क दिल्ली ने इन लेखों को पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का सुझाव देते हुए प्रकाशन का उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर लेने की इच्छा प्रकट की। स्मारक समिति ने उनके सुझाव को सहर्ष स्वीकार कर यह कार्यभार उन्हें सौंप दिया। उनके सद् प्रयत्नों अनुभव और पुरुषार्थ स्वरूप ही अयत्न्त अल्प समय में यह पुस्तक वड़े आकर्षक रूप में छपकर जनता के हाथों में पहुँच रही है। स्मारक समिति उन्हें भी वहुत-वहुत धन्यवाद देती है।

इस शताब्दी वर्ष के अवसर पर मुझे पूर्ण विश्वास है कि पुरस्कृत विद्वानों के लेखों तथा अन्य विद्वानों के वहुमूल्य विचारों से पूर्ण इस पुस्तक का आद्योपान्त पठन, मनन तथा आचरण करके ही हम सव, अपने आर्य समाज को महर्षि दयानन्द के चिन्तन, मनन तथा स्वप्नों का सच्चा आर्य समाज वनाकर ऋषि से उऋण हो ऋण सकेंगे।

आशा है—आर्य जनता इस पुस्तक को हाथों हाथ अपना कर पूरा-पूरा लाभ उठाते हुए प्रकाशक महोदय को इस पुस्तक के कई संस्करण प्रकाशित करने पर विवश कर देगी, तभी हम अपने इस आयोजन को सफल समझेंगे।

कार्यालय :—
१६५४, कूचा दखिनीराय
दरियागंज दिल्ली-६
चैत्र, शुक्ला प्रतिपदा विक्रमी
सम्वत् २०३२, १२ अप्रैल, १९७५ ई०

विनीत :—
देवव्रत धर्मेन्दु
आर्योपदेशक
मन्त्री,
स्वर्गीय सत्यप्रिया स्मारक समिति

प्रो० जयदेव आर्य एम० ए०
अध्यक्ष संस्कृत विभाग
राजकीय महाविद्यालय
नारनौल, (हरियाणा)

डॉ० भवानीलाल भारतीय
एम० ए०-पी० एच० डी
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय
अजमेर (राजस्थान)
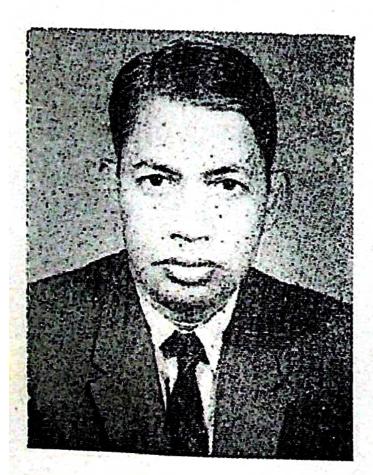
प्र० ओमप्रकाश एम० ए०
प्रो० राममनोहर लोहिया कालेज
मुजफ्फरपुर (बिहार)

१

प्रो० जयदेव आर्य एम० ए० वेदाचार्य

महर्षि दयानन्द ने जब लाहौर में आर्यसमाज की स्थापना की, तो, उसका उद्देश्य संसार का उपकार करना घोषित किया, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।[1] इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आर्यसमाज बम्बई के नियमों में दो बातों पर विशेष बल दिया गया था:—एक 'सत्यधर्म' और दूसरी 'सत्य नीति' पर विचार करना।[2] इन्हीं दोनों बातों का स्पष्टीकरण करते हुए पुनः कहा गया था, "इस समाज में स्वदेश के हितार्थ दो प्रकार की शुद्धि के लिए प्रयास किया जायेगा—एक परमार्थ, दूसरा व्यवहार। इन दोनों का शोधन तथा सब संसार के हित की उन्नति की जायेगी।"[3] आर्य समाज का यह उद्देश्य शास्त्रोक्त धर्म के लक्षण—इहलोक तथा परलोक की सिद्धि[4]—को दृष्टि में रखकर ही निश्चित किया गया होगा। यतः उस समय तक स्थापित सभी आर्यसमाजों को नियन्त्रित करनेवाली किसी अन्य शिरोमणि केन्द्रीय आर्यसभा का अस्तित्व नहीं था।

---

१. आर्यसमाज का षष्ठ नियम।

२. आर्यसमाज बम्बई का एकादश नियम।

३. उसी का सत्रहवां नियम।

४. 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः'—वैशेषिक दर्शन।

महर्षि का स्वीकार-पत्र

महर्षि ने अपनी एकमात्र उत्तराधिकारिणी सभा के रूप में परोपकारिणी सभा की स्थापना की और अपने स्वीकार-पत्र में इसके जिम्मे निम्न कार्य[1] लगाते हुए घोषणा की कि यह सभा मेरी सम्पत्ति को—

१. वेद और वेदाङ्ग आदि शास्त्रों के प्रचार अर्थात् उनकी व्याख्या करने-कराने, पढ़ने-पढ़ाने, सुनने-सुनाने, छापने-छपवाने आदि में,

२. वेदोक्त धर्म के उपदेश और शिक्षा अर्थात् उपदेशक-मण्डली नियत करके देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में भेजकर सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग आदि में,

३. आर्यावर्त्त के अनाथ और दीन जनों की शिक्षा और पालन में खर्च करे।

इस विवरण से महर्षि दयानन्द के स्वप्नों के आर्यसमाज का जो स्वरूप हमारे नेत्रों के समक्ष उभरकर आता है, उसके अनुसार—

१. सैद्धान्तिक रूप से वैदिक मान्यताओं एवं आदर्शों का मंच तथा साहित्य द्वारा विश्वभर में प्रचार करना,

२. व्यावहारिक रूप से उन मान्यताओं एवं आदर्शों के अनुकूल जन-जीवन को ढालकर उसकी सर्वाङ्गीण उन्नति का मार्ग प्रशस्त करना, तथा साथ ही साथ,

३. आर्यावर्त्त के दीन-हीन जनों के शिक्षण तथा पालन का प्रयास करना आर्यसमाज का लक्ष्य ठहरता है। इस महान् लक्ष्य

---

१. महर्षि दयानन्द का जीवन-चरित्र 'आर्य धर्मेन्द्र जीवन'—रामविलास शारदा कृत—पृ० १६७-६८.

महर्षि दयानन्द के स्वप्नों का आर्य समाज कैसे बनायें

मई १९६४ में मैं अपने सुपुत्र डा० सुभाषचन्द्र आर्य जो उस समय शिकागो विश्वविद्यालय में थे मिलने गया। रास्ते में दो तीन दिन रोम (इटली) में अपने एक आर्य समाजी मित्र महाराज कृष्ण जी जो भारतीय दूतावास में एक उच्च पद पर उन दिनों थे, के यहां ठहरा।

रोम एक ऐतिहासिक और पुराना नगर है और वह इटली की राजधानी है इस नगर का एक छोटा सा भाग (वैटिगन) एक पृथक पोप का राज्य है। पोप संसार के ईसाइयों का माननीय सर्वोच्च अधिकारी है। वहाँ मैंने देखा कि पोप ने सब देशों से ५-६ सौ से अधिक ईसाई प्रचारकों को बुलाया हुआ था। उनकी सभा दो तीन महीनें से चल रही थी ऐसी सभाएं समय-समय पर वहाँ होती रहती हैं। जिनसे ईसाई मत के प्रचार पर प्रतिदिन घंटों विचार विमर्श होता था। और संसार के प्रत्येक भाग से आये प्रचारक अपने अनुभव बनाते और उसके अनुसार प्रचार को तीव्र गति देने के लिये प्रत्येक देश की प्रचारशैली में परिवर्तन अच्छी प्रकार सोच विचार कर स्वीकार किये जाते। यदि आवश्यकता पड़ती तो बाईबिल के अर्थों को भी समयानुसार बदलने की स्वीकृति दी जाती। उस समय मेरे मन में आया कि आर्य समाज को भी अपने विद्वानों और प्रचारकों की ऐसी सभायें समय-समय पर बुलानी चाहिए। ताकि समयानुसार भिन्न-भिन्न प्रान्तों तथा विदेशों में आर्य समाज के प्रचार को तीव्र बनाने के लिये विचार विमर्श किये जा सकें।

प्रायः देखा गया है कि आर्य समाज के प्रचार की वही शैली जो हम ५०–६० वर्ष से देख रहे हैं चली जा रही है। साप्ताहिक सत्संग में भी प्रायः उसी प्रकार कार्यक्रम होता है जिस प्रकार ५०–६० वर्ष पहले हुआ करता था। उसी प्रकार से वार्षिक उत्सव जिसका मुख्य कार्यक्रम एक शोभा यात्रा और दो तीन विद्वानों का व्याख्यान और भजन। आज भी वैसे ही हैं। कुछ समय से उत्सवों में कई सम्मेलनों का आयोजन किया जाता है परन्तु उनका विशेष लाभ कुछ नहीं होता। प्रस्ताव पास किये जाते हैं जो आर्य समाजों की रिपोर्ट पर ही सीमित रहते हैं।

मैंने कई बार आर्य समाज के विद्वानों और सन्यासियों, अधिकारियों से विचार प्रकट किया कि वे भी ईसाई प्रचारकों जैसी सभाएं बुलाकर आर्य समाज के प्रचार की शैली में समयानुसार परिवर्तन करें। परन्तु वैसा हो नहीं पाया। ऐसी सभायें केवल सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा जो आर्य समाज की शिरोमणि संस्था है बुला सकती है। इसी विचार को लेकर मैंने स्मारक समिति का ओर से शताब्दी के अवसर पर आर्य जगत् के विद्वानों से इस विषय पर लेख लिखने की प्रार्थना की इन विद्वानों के विचार पाठकों को इस में पुस्तक मिलेंगे।

आर्य समाज से महर्षि को बड़ी आशायें थीं, उन्होंने एक पत्र सम्वत् १९३३ चैत्र वदी ९ में एक स्थान पर लिखा कि "इस लिये जो उन्नति करना चाहो तो आर्य समाज के साथ मिलकर उसके उद्देश्य अनुसार आचरण करना स्वीकार कीजिये नहीं तो कुछ हाथ नहीं लगेगा। आर्य समाज आर्यवर्त देश की उन्नति का कारण है वैसा दूसरा नहीं हो सकता।" आज सौ वर्ष के पश्चात् एक निष्पक्ष मनुष्य यह कहे विना नहीं रह सकता कि आर्य समाज ने केवल भारत वर्ष ही नहीं परन्तु अनेक विदेशों में धार्मिक, सामाजिक और शिक्षा के क्षेत्र में एक महान् कार्य किया। हिन्दू समाज की कुरीतियों को हटाने में आर्य समाज का बड़ा हाथ रहा। शुद्धि, दलितोद्धार

अछूतो द्धार, अन्तर-जातीय विवाह, विधवा-विवाह नारी शिक्षा अनाथों एवं असहायों की सेवा अनेक कार्य हैं जो आर्य समाज के प्रचार के कारण प्रायः सारा हिन्दू समाज इनको अपनाता है।

यदि यह कहा जाय कि भारत का विधान जो २६ जनवरी १९५०से लागू है वह आर्यसमाज के मन्तव्यों का आधार है तो गलत न होगा। आर्यसमाज की उपलब्धियां अनगिनित हैं परन्तु यह सब होते हुए भी क्या हम कह सकते हैं कि आर्य समाज के प्रचार की तीव्र गति मन्द नहीं पड़ गई, क्या ये सच नहीं कि हिन्दू समाज के युवक और बुद्धि जीवी जो आर्य समाज के पूर्वसमय में खीचें आते थे आज कुछ दूर होते जा रहे हैं। आर्य समाज इन तक उतना नहीं पहुंच पाता जितना पहले था। कई बार कुछ आर्य विद्वान तो यह भी कह देते हैं कि आर्य समाज अब सनातन धर्म ही बनता जा रहा है,। महर्षि दयानन्द एक क्रान्तिकारी महापुरुष थे और उन्होंने धर्म के क्षेत्रमें बहुत बड़ी क्रान्ति की, क्रान्ति का एक स्वभाव यज्ञ अग्नि की तरह है यदि उसमें घी सामग्री डालते रहें तो अग्नि तीव्र रहेगी अथवा इस प्रकार आर्य समाज रूपी यज्ञ अग्नि में तपस्या की सामग्री न डाली गई तो वह मन्द पड़ जायेगी। यदि हम आर्य समाज के पूर्व काल को देखें तो इस बात की पुष्टि हो जाती है कि उस थोड़े समय में महर्षि दयानन्द, पं० लेखराम, स्वामी श्रद्धानन्द आदि के जीवन दान से और महात्मा हंसराज, पं० गुरुदत्त आदि महात्माओं के त्याग से आर्य समाज भारत और विदेशों में फैला।

महर्षि को जो आशायें थीं उनको यदि आर्य समाज ने पूर्ण करना है तो अगले १०० वर्ष नहीं तो २५-२५ वर्ष की एक योजना बनानी होगी। इस योजना में मेरे निम्न लिखित सुझाव हैं:—

(क) आर्य समाजों के आपस में आये दिन के झगड़े समाप्त करने के लिये चुनाव की शैली बदलनी होगी। प्रायः देखा गया है कि आधुनिक चुनाव शैली ही झगड़ों का मूल कारण होती है। कुछ ऐसी ही शैली बनायी जावे कि कोई अधिकारी सभासदों के पास मतदान के लिये

न जाये। केवल वह सभा-सद अधिकारी चुने जावें जो प्रति दिन अथवा महीनों में कुछ दिन आर्य समाज के ठोस काम में पर्याप्त समय दें।

(ख) युवक वर्ग को आर्य समाज में लाने के लिये आर्य समाज और डी० ए० वी० शिक्षण संस्थाओं के लिये आर्य विचारों के शिक्षक तैयार किये जावें। जब तक ऐसा नहीं होता आर्य समाज की शक्ति और धन इन संस्थाओं में व्यर्थ जायेगी।

(ग) आर्य समाज के प्रचार के लिये ऐसे उपदेशक तैयार किये जायें जो भिन्न प्रान्तों और विदेशों में उन लोगों के बीच उनकी ही भाषा में प्रचार कर सकें। और उनकी अपनी भाषा में आर्य साहित्य छपवाया जावे। अच्छे विद्वानों और उपदेशकों को आकर्षित करने के लिये उनको उचित वेतन तथा उनके रहन सहन, बच्चों की शिक्षा आदि का समाज की ओर से पूरी व्यवस्था हो, उनके रोगी होने पर अथवा रिटायर्ड होने पर उनके पेंशन ग्रेज्यूटी आदि की भी पूरी व्यवस्था होनी चाहिये।

(घ) उपदेशक और विद्वानों का यथोचित् मान किया जाय, उनको एक वैतनिक सेवक अथवा चपरासी समझकर अधिकारी वर्ग वर्ताव न करें, किन्तु उनको मान दें—जो एक ब्राह्मण को मिलना चाहिये।

(ड़) प्रचार की शैली प्रत्येक प्रान्त व देश के निवासियों को दृष्टि में रखकर निर्धारित की जावे। इसके लिये समय-समय पर प्रचारकों से सम्मति लेकर प्रचार शैली में उचित परिवर्तन किया जावे।

(च) प्रचार का क्षेत्र केवल बड़े नगरों तक ही समिति न हो किन्तु ग्रामों में और विशेष कर पिछड़ी जातियों में अधिक होना चाहिए।

(छ) प्रायः आजकल हमारा प्रचार, मंच और साहित्य पर ही रह गया है। जो प्रस्ताव आर्य समाज के मंच से पास किये जाते हैं उन पर विशेष कर समाज के अधिकारी और सभासद पूर्ण रूप से अपने

जीवन में क्रियात्मिक रूप से अपनायें। नहीं तो इसका कोई लाभ नहीं होता उदाहरण के रूप में दो वर्ष पहले आर्य सम्मेलन अलवर में एक प्रस्ताव पास हुआ कि कोई आर्य समाजी अपने नाम के आगे जाति न लिखा करें। जिसपर समाज के अधिकारियों ने कोई ध्यान नहीं दिया, अभी लुधियाना में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने दहेज न लेने अथवा विवाह के अवसर पर बहुत थोड़ा व्यय करने का प्रस्ताव पास किया। इस पर भी कोई ध्यान नहीं दिया गया। सामाचार पत्रों में तो इसका प्रचार हो रहा है परन्तु कोई विरला इस पर आचरण करता है।

(ज) राजनीति में अधिक भाग लेनें वाले आर्य समाजियों को समाज में उच्च पद नहीं देना चाहिए।

नवनीतलाल एडवोकेट

को लेकर आरम्भिक काल का आर्यसमाज जिस तीव्र गति से प्रगति पथ पर बढ़ा, उसे देखकर सारे विश्व में एक हलचल मच गई।

अमेरिका के योगी जेक्सन डेविस की दृष्टि में आर्यसमाज : एक भयंकर आग

सुदूर अमेरिका में बैठा एक योगी एण्ड्रो जेक्सन डेविस हर्ष विभोर होकर पुकार उठा, "मुझे एक आग दिखलाई पड़ती है, जो हर वस्तु को जलाकर साफ कर रही है। अमेरिका के समतल मैदानों, अफ्रीका के विस्तृत देशों, एशिया के प्राचीन पर्वतों तथा यूरोप के विशाल साम्राज्यों पर मुझे इस अतिदाहक अग्नि की लपलपाती हुई लपटें दिखाई देती हैं।......इस असीम आग को देखकर, जो निश्चित ही राजाओं, सम्राटों तथा विश्वभर की राजनीतियों व बुराइयों को पिघला देगी, मैं अति हर्षविभोर होकर एक उत्साहपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहा हूँ।......यह आग प्राचीन आर्य धर्म को असली पवित्र अवस्था में लाने के लिए एक भट्टी है जिसे आर्य समाज कहते हैं। यह आग भारतवर्ष के एक परम योगी दयानन्द सरस्वती के हृदय में आविर्भूत हुई है। हिन्दू व मुसलमान इस विश्वदाहक आग को बुझाने के लिए चारों ओर तीव्र गति से दौड़ रहे हैं, परन्तु, यह आग ऐसी तीव्र गति से फैल रही है कि जिस तीव्रता की उसके संस्थापक दयानन्द को कल्पना भी नहीं थी। और ईसाइयों ने भी......एशिया के इस नये प्रकाश को बुझाने के लिए हिन्दू और मुसलमानों का साथ दिया, परन्तु यह दिव्य-अग्नि और भी भड़क उठी और विस्तृत हो गई। समस्त दुर्गुणों का समूह सदा की पवित्र करनेवाली भट्टी में जलकर भस्म हो जाएगा और रोग के स्थान पर स्वास्थ्य, अज्ञान के स्थान पर विज्ञान, घृणा की जगह प्रेम, शत्रुता की जगह मित्रता, नरक की बजाय स्वर्ग, दुःख के स्थान पर सुख, भूत-प्रेतों के स्थान पर परमेश्वर और प्रकृति का राज्य होगा। मैं इस आग का स्वागत करता

हूँ। जब यह अग्नि इस सुन्दर भूमि को नया जीवन प्रदान करेगी तो सार्वभौम शान्ति, समृद्धि और प्रसन्नता का युग शुरू होग।"[1] गुरुकुलों की स्थापना ने आर्यसमाजियों में एक नई उमंग और आशा का संचार किया और वे झूम-झूमकर यह तराना गाने लगे—

आएँगे खत अरब से, जिनमें लिखा यह होगा।
गुरुकुल का ब्रह्मचारी, हलचल मचा रहा है॥

परन्तु महर्षि के वे स्वप्न, एण्ड्रो जेक्सन डेविस को वह भविष्य-वाणी और आर्यजनों की वे आशाएँ और उमंगें साकार न हो पाए। आर्यसमाज के पाँव संस्थावाद की भूल-भूलैयाँ में कुछ ऐसे उलझे कि वह आज तक सँभल ही नहीं पाया। अपने को ऐसी असहाय-अवस्था में पाकर उसनें उसी को अपनी नियति मानकर सन्तोष कर लिया और निद्रामग्न हो गया।

बड़े शौक से सुन रहा था ज़माना,
तुम्हीं सो गए निज कथा कहते-कहते॥

आज का आर्यसमाज चारदीवारी में बन्द

आज स्थिति यह है कि जहाँ कल उत्पन्न हुए अनेक पाखण्ड-मतों की दुन्दुभि विश्वभर में बज रही है, वहाँ आर्यसमाज का नाम विश्व तो क्या, भारत के भी सब नागरिक नहीं जानते। ले-देकर उत्तर भारत के और कुछ अफ्रीका आदि के उन प्रदेशों और वहाँ भी अधिकतर उन नगरों तक ही, जहाँ कि पंजाब या हरियाणा और उत्तरप्रदेश के कुछ आर्यसमाजी जाकर बसे हुए है, आर्यसमाज का नाम और काम सीमित है। कवि प्रकाश के शब्दों में जहाँ महर्षि दयानन्द ने 'वेदों का डंका आलम में बजवा दिया' था, वहाँ पंडित गङ्गाप्रसाद उपाध्याय के शब्दों में आज

१. महर्षि दयानन्द संसार की नजरों में—उर्दु—ला—उलफत राय (१६३३ ई० में पृ० २७-२८ पर [Beyond The Valley,] पृ० ३८२ से उद्धृत)

आर्यसमाजियों का आलम उनके आर्यसमाजमन्दिरों की चारदीवारी के भीतर ही सीमित होकर रह गया है, जहाँ वे प्रत्येक रविवार को कुछ समय तक वेद का डंका बजाकर अपने घर चले जाते हैं। व्यावहारिक दृष्टि से आर्यसमाजियों के जीवन में दूसरे लोगों से कोई विशिष्टता दृष्टिगोचर नहीं होती और इसीलिए आर्यसमाज पार्टीबाजों का अखाड़ा बन चुका है।

क्या मंच और क्या साहित्य—दोनों दृष्टियों से हमारा प्रचार-तन्त्र निर्जीव हो चुका है और व्यावहारिक क्षेत्र में धर्म के बाह्य कर्मकाण्डपरक निर्जीव स्थूल शरीर को ही हम किसी अंश तक साग्रह पकड़े हुए हैं। यमनियमादिपरक धर्म की जीवनभूत आत्मा का आँचल हमसे जाने-अनजाने छूट चुका है। हम ईंट-पत्पर के भव्य भवन खड़े करने और बड़े-बड़े जलसे-जुलूसों का आयोजन करने को ही आर्यसमाज के जीवन का चिह्न मानकर मानव-निर्माण के कार्य से पराङ्मुख हो चुके हैं। रविवार के दिन केवल कुछ वृद्ध लोग ही आर्यसमाजों के सत्संगों में दिखलाई पड़ते हैं और वे भी वहाँ १-२ घण्टे के लिए अधूरे और नकली अध्यात्मवादी तथा शेष जीवन में पूरे भौतिकवादी होते हैं। वहाँ भी प्रायः भाषण और शान्तिपाठ के पश्चात् जो चख-चख देखने में आती है, उससे उस नकली अध्यात्मवाद की भी कलई वहीं खुल जाती है। चौकी पर निरा अध्यात्मवादी और चौके में पूरा भौतिकवादी—यही विभक्त दोहरा जीवन जीना हमारा आदर्श बन चुका है और इसीलिए हम स्वयं अपनी और फलतः जनता की दृष्टि में पतित होकर महर्षि के महान् आर्यसमाज को भी साथ ही ले डूबे हैं। समाज-सेवा के नाम पर भी जो कुछ आज हो रहा है, उसमें प्रदर्शनभाव प्रधान और सच्ची समाज-सेवा का भाव गौण हो चुका है और अनेक स्वार्थी लोग आर्यसमाज की संस्थाओं के माध्यम से स्वयं को धन एवं प्रतिष्ठा से तथा आर्य-

समाज को पाप एवं अपयश से संयुक्त कर रहे हैं। जो कुछ सच्चे आर्यसमाजी हैं, वे इस अवस्था को देख-देखकर तथा स्वयं को उसमें कुछ भी परिवर्तन कर सकने में असमर्थ पाकर किंकर्तव्यविमूढ़ बने मूक दर्शकभाव धारण कर चुके हैं या अरण्य-रोदन के समान कुछ निरर्थक शोर मचाते रहते हैं।

इस अवस्था के प्रति असन्तोष सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है, पर समाधान कहीं दिखाई नहीं पड़ता।

प्रश्न है, इस स्थिति से आर्यसमाज कैसे उभरे ? आज का आर्यसमाज महर्षि दयानन्द के स्वप्नों का आर्यसमाज कैसे बने ? वह महर्षि द्वारा निर्धारित लक्ष्य को कैसे प्राप्त करे ? और इसके लिए अपने संघठन को दृढ़ तथा निर्दोष कैसे बनाए ? इन्हीं प्रश्नों का समाधान इस लेख में प्रस्तुत किया जायेगा।

मंच और साहित्यिक प्रचार के आवश्यक घटक

आर्यसमाज के उपरिनिर्दिष्ट तीन लक्ष्यों में सर्वप्रथम आधारभूत लक्ष्य है—वैदिक मान्यताओं एवं आदर्शों का मंच तथा साहित्य के माध्यम से विश्वव्यापी सैद्धान्तिक प्रचार। इन माध्यमों में से प्रथम मंच मौखिक प्रचार का माध्यम है और उसके घटक अंग ५ हैं—१. मंच, २. प्रचारक, ३. जनता, ४. प्रचारित विषय, तथा ५. प्रचार-शैली। इसी प्रकार साहित्यिक प्रचार-तन्त्र के भी कई अंग हैं, जैसे—१. लेखक, २. प्रकाशक, ३. मुद्रित पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ, ४. उनके विक्रेता, ५. पाठक, ६. पुस्तकालय आदि। देश-काल का सम्बन्ध इन सभी से रहता है। यदि हम इन दोनों प्रचार-माध्यमों तथा उनके समस्त घटकों की दृष्टि से अपनी वर्तमान प्रचार-प्रणाली पर दृष्टिपात करें, तो, हमें प्रतीत होगा कि यह सर्वथा अनुपयुक्त, अशक्त तथा अपूर्ण है। कैसे ? सर्वप्रथम मंच के घटक अंगों को लीजिए :

अत्यन्त सीमित और संकुचित मंच

आर्यसमाज के मंच का क्षेत्र बहुत सीमित है। सामान्यतः, आर्यसमाज का प्रचार आर्यमंदिरों की चारदीवारी में ही होता है, जहाँ कुछ बँधी-बँधाई, निश्चित, आर्यसमाज से पहले ही परिचित जनता पहुँचती है और समाज के एक बड़े भाग को आर्यसमाज का कुछ भी परिचय नहीं हो पाता। बहुत कम आर्यसमाज ऐसे हैं, जो आर्यसमाज मन्दिर की चारदीवारी से बाहर निकलकर कभी पार्कों, सार्वजनिक सभा-भवनों, गली-मुहल्लों, विद्यालयों, घरों, मेलों तथा चौराहों पर अपने मंच लगाते हों, जिससे आर्यसमाज से अपरिचित लोगों के कानों तक भी घर बैठे ही आर्य समाज का कुछ-न-कुछ सन्देश पहुँचे; स्त्रियाँ भी आर्यसमाज के प्रचार को सुन सकें तथा हरिजनों और मजदूरों की बस्तियों में भी आर्यसमाज का प्रचार एवं प्रसार हो। हमारा मंच केवल कुछ निम्न-मध्यवर्गीय लोगों तक ही सीमित है। हरियाणा को छोड़कर ग्राम भी प्रचार से अछूते हैं और पंजाब, हरियाणा तथा उत्तरप्रदेश के बाहर का सारा देश आर्यसमाज के प्रचार से प्रायः अपरिचित है। विदेशों में इन्हीं प्रदेशों के मूल की जनता में ही आर्यसमाज का प्रचार है और अफ्रीकनों तथा यूरोपियनों में आर्यसमाज की कोई पहुँच नहीं है। आर्यसमाजों के वार्षिक-उत्सवों पर ही ३-४ दिन बड़ी धूम-धाम होती है, उपदेशकों की भीड़ हो जाती है, जिन्हें बोलने का भी समय नहीं मिल पाता और हजारों-लाखों रुपए इन उत्सवों तथा सम्मेलनों में खर्च हो जाते हैं और फिर शेष समय के लिए वही श्मशान की-सी शान्ति छा जाती है और आर्यसमाजों के द्वार पर ताला जड़ दिया जाता है, जो सातवें दिन रविवार को कुछ समय के लिए खुलकर पुनः बन्द हो जाता है या आर्यसमाज में कोई पाठशाला चलती रहती है। आर्यसमाज के लिए यह स्थिति अशोभनीय है।

मंच का विकेन्द्रीकरण आवश्यक

आर्यसमाज के मंच को विस्तृत करने के लिए आवश्यक है कि इसका विकेन्द्रीकरण हो। आर्यसमाज नाई की मंडी, आगरा द्वारा कुछ वर्ष पूर्व पास के ही सुभाष पार्क में अपना सत्संग लगाया जाता था, जहाँ मुझे भी कुछ दिन भाषण देने का अवसर मिला। पार्क में प्रातः घूमने के लिए आनेवाले अनेक गैर-आर्यसमाजी लोग भी भाषण सुनने के लिए बैठ जाते थे और कई बार नए लोग आर्यसमाज की ओर आकृष्ट होते थे। हिसार में लगातार कई वर्षों के आग्रह के पश्चात् एक बार वहाँ के आर्यसमाज ने रात्रि को कई दिन तक नगर के विभिन्न स्थानों पर अपना प्रचार-मंच लगाया, तो उपस्थिति देखकर आर्यसमाज के अधिकारी दंग रह गए। कभी मेलों पर आर्यसमाज के प्रचार की बड़ी धूम रहती थी पर अब वह परिस्थिति नहीं रही। नारनौल के पास ही एक भैरों का स्थान है, जहाँ प्रतिवर्ष एक बड़ा मेला लगता है। गत वर्ष जब मैं वह मेला देखने गया तो देखा कि पास के नगर के एक आर्यसमाज के मंत्री का बीड़ी-प्रचार का मण्डप तो खूब जमा है पर आर्यसमाज के प्रचार का मंडप कोई नहीं। कभी इसी मेले में बड़ी गुण्डागर्दी हुआ करती थी जिसे आर्यसमाज के ही एक उत्साही प्रचारक श्री हीरालाल जी आर्य (रेवाड़ी) ने पूर्णतः बन्द करवा दिया था, जो अब भी बन्द है, पर साथ ही आर्यसमाज का प्रचार भी अब बन्द हो चुका है और आर्यसमाज के उस कार्य को लोग प्रायः भूल चुके हैं। नारनौल में ही २-३ वर्षों से प्रतिवर्ष ग्रीष्मावकाश में दोनों प्रतिद्वन्द्वी आर्यसमाज जिला-स्तर का सम्मेलन करते हैं, पर उसके बाद बार-बार प्रेरणा करने पर भी वे नगर में या गाँवों में कभी आर्यसमाज का सार्वजनिक मंच लगाने को तैयार नहीं होते, कभी किसी विद्यालय में आर्यसमाज के भाषण करवाने का विचार नहीं करते, कभी पारिवारिक सत्संग नहीं

लगाते (संस्करों के अवसरों को छोड़कर)। अतः आर्यसमाज के मंच को व्यापक बनाने के लिये निम्न कार्य किए जाने चाहिएँ।

(१) मंच

आर्य समाज के मंच को व्यापक बनानें के कुछ साधन

आर्यसमाज की सभाएँ ऐसे सार्वजनिक स्थानों पर आयोजित की जानी चाहिए, जहाँ आते-जाते, अपने घरों में और दुकानों पर बैठे हुए नर-नारी भी उसके सन्देश को अनायास सुन सकें।

२. आर्यसमाज के प्रचारकों के आर्य समाज के शिक्षा-विषयक दृष्टिकोण पर विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में समय-समय पर भाषण करवाए जाएँ।

३. हरिजनों तथा मजदूरों की वस्तियों में भाषणों की विशेष व्यवस्था की जाए।

४. कृष्णजन्माष्टमी के अवसर पर कृष्ण-जीवन या महाभारत और विजया-दशमी के दिन रामलीला के समाप्त होते ही वाल्मीकि रामायण की कथा दीपावली तक कराई जाया करे और श्रावणी के अवसर पर वेद और 'आर्यसमाज स्थापना दिवस' के अवसर पर महर्षि दयानन्द कृत ग्रन्थों की, इसी प्रकार गली-मुहल्लों में कथा कराई जाए। इससे आर्यसमाज के मंच को व्यापक आधार प्राप्त होगा।

५. जिला और तहसील के स्तर पर वेद-प्रचार-मण्डलों की स्थापना करके ऐसी व्यवस्था की जाए कि प्रत्येक एक या दो मास के बाद प्रत्येक ग्राम में एक दिन के लिए आर्यसमाज के प्रचारक अवश्य पहुँचें, अर्थात्, अधिक-से-अधिक साठ ग्रामों पर एक भजन-मण्डली की व्यवस्था अवश्य हो और वे क्रमशः एक के बाद दूसरे ग्राम में नियम से जावें।

६. उन ग्रामों में से प्रत्येक ग्राम में २-३ व्यक्तियों को एक समिति बनाकर उसे गाँव से धन जमा करने का कार्य सौंपा जाय। एक वर्ष में एक ग्राम से यदि कम-से-कम एक सौ रुपया, जो किसी प्रकार भी अधिक नहीं है, वह समिति एकत्रित करे, तो प्रतिवर्ष साठ ग्रामों पर छः हजार रुपया एकत्रित होगा, जो एक भजन-मण्डली के लिए किसी भी प्रकार कम नहीं है। किसी भी उपदेशक को धन जमा करने का कार्य न सौंपा जाए, वह केवल नियमित रूप से प्रचार करे।

७. इन भजन-मण्डलियों के क्षेत्र को भी इस प्रकार परिवर्तित करते रहना चाहिए जिससे कि जनता की रुचि भी जागृत रहे और प्रचार-कार्य में भी बाधा न पहुँचे।

८. परिवारों में वैदिक सिद्धान्तों के प्रवेश के लिए साप्ताहिक पारिवारिक सत्सङ्गों, पारिवारिक कीर्तनों एवं कथाओं की पद्धति को प्रोत्साहन दिया जाए और उस समय किसी भी अवस्था में आर्य-समाज के लिए दान न लिया जाए। ग्रामों की तरफ मुहल्लों में भी-वार्षिक राशि एकत्रित करने के लिए आर्यसमाज के सदस्यों को कार्य भार सौंपा जाए और पारवारिक रूप से भी अधिक क्षेत्रीय या गली-सत्सङ्गों को प्रचलित किया जाए। इस पद्धति से किसी भी व्यक्ति या परिवार पर आर्थिक बोझ न पड़ेगा और वार्षिक आय भी नियमित रूप से अनायास ही होती रहेगी।

९. आर्यसमाज की शिक्षण-संस्थाओं में तो उपर्युक्त ग्राम-प्रचार-व्यवस्था के समान आर्यसमाज के भाषणों की नियमित व्य-वस्था होनी चाहिए और योग्य, सुशिक्षित, मनोविज्ञान से परिचित वक्ता को क्रमशः एक के बाद दूसरी संस्था में जाकर भाषण देते रहना चाहिए। उसके वार्षिक वेतन की पूर्ति भी इन संस्थाओं से ही सरलता से हो सकती है।

१०. समय-समय पर वकीलों के मध्य भी विशिष्ट वक्ताओं के

भाषण आयोजित करने चाहिएँ। नारनौल में रजनीश-शिष्यों का भाषण वार-रूम में हुआ था।

११. आर्यसमाजों को भी कभी-कभी शिक्षकों, वकीलों, डाक्टरों, पत्रकारों तथा साहित्यकारों के लिए ही विशिष्ट भाषण की व्यवस्था करनी चाहिए। दिल्ली जैसी महानगरियों को विदेशी मिशनों के लोगों के लिए भी अंग्रेजी में विशिष्ट भाषणों की व्यवस्था करनी चाहिए, जैसी कि रामकृष्ण मिशन करता है। सन् १९६५ के लगभग आर्यसमाज, मन्दिर मार्ग ने ऐसी कुछ व्यवस्था की थी, परन्तु खेद कि उसे कार्यान्वित नहीं किया गया।

१२. शास्त्रार्थों के बन्द हो जाने से भी आर्यसमाज का मंच सीमित हो गया। अब सर्वधर्म सम्मेलनों के माध्यम से उसकी कुछ क्षतिपूर्ति की जा सकती है।

वार्षिक समारोहों के बदले शृंखलाबद्ध कथाओं को वरीयता

१३. वार्षिक-उत्सवों की प्रथा सर्वथा समाप्त कर देनी चाहिए या फिर उन्हें शृंखलाबद्ध रूप में करना चाहिए—एक के बाद दूसरा नगर, न कि आज एक उपदेशक यहाँ है, तो दूसरे दिन ५०० मील दक्षिण में और तीन दिन बाद फिर पास के नगर में। इस प्रथा से (१) प्रतिवर्ष लाखों रुपए मार्ग-व्यय में नष्ट होते हैं। (२) उपदेशकों के स्वास्थ्य पर अत्यधिक यात्राओं का दुष्प्रभाव पड़ता है। (३) उनकी दैनिक जीवनचर्या तथा स्वाध्याय में भारी विघात होता है। यदि वे एक स्थान पर प्रचार समाप्त कर १५-२० मील आगे के नगर में जाएँ और वहाँ से फिर पास के नगर में तथा इस प्रकार ४००-५०० मील तक एक ही सीध में प्रचार करके वापस घर लौट आएँ, तो इनमें से कोई भी दोष उपस्थित न होगा। साथ ही एक स्थान पर ४-५ वक्ताओं से अधिक नहीं होने चाहिए। सहारनपुर के पास एक स्थान पर एक भजनोपदेशक के अतिरिक्त हम दो ही वक्ता थे—गुरुकुल कांगड़ी के श्री सत्यव्रत राजेश तथा मैं। रात्रि को मेरा सत्यार्थप्रकाश

पर १४० मिनट का भाषण हुआ और सभी श्रोता दत्तचित्त होकर भाषण सुनते रहे। ५-६ वर्ष बाद भी मैं उस आनन्द को भूल नहीं पाता। न कोई हड़बड़ी और न समाज पर आर्थिक बोझ। श्रोता भी प्रसन्न और उपदेशक तथा आर्यसमाज के अधिकारी भी। मासिक, त्रैमासिक, षाण्मासिक लम्बी कथाओं का आयोजन किया जाना श्रेयस्कर है। थोड़े उपदेशक, शक्ति-व्यय कम, पर प्रचार अधिक।

सुन्दर, स्वच्छ, आकर्षक मन्दिर और स्वाध्याय-व्यवस्था हो

१४. आर्यसमाज-मन्दिरों का स्वरूप अत्यन्त आपत्तिजनक एवं अशोभनीय है। वहाँ या तो ताला लगा होगा या पाठशाला। किसी आने-जानेवाले उपदेशक, संन्यासी या आर्यबन्धु के ठहरने का स्थान नहीं। पुरोहित किसी-किसी समाज में होते हैं। सेवक होगा, तो सबका गुरु, जबान का तेज, उपदेशकों का उपदेशक। आर्य समाज की उन्नति के लिए आवश्यक है कि आर्य समाजों का स्वरूप धार्मिक मन्दिरों का हो, न कि बारातघरों का। स्वच्छ-साफ मुख्य हॉल हो, दरी-चादर बिछी रहें, वेदी पर वस्त्र से ढके मोटे अक्षरों वाले धार्मिक ग्रन्थ—वेद, वेद-भाष्य, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका और सत्यार्थ-प्रकाश आदि—चौकी या पुस्तक रखने के स्टैण्ड पर रखे रहें, ताकि कोई भी व्यक्ति किसी समय उन्हें पढ़ सके। दीवारें वेदमन्त्रों, आर्यसमाज के सिद्धान्तों तथा केवल आर्य महापुरुषों के चित्रों से सजी हों। यज्ञशाला का स्थान सुरक्षित हो। ऊपर अतिथियों के ठहरने के लिए धर्मशाला हो। आर्यसमाज के परिसर में किसी बारात के ठहरने का स्थान नहीं होना चाहिए। हो, तो उसका प्रवेश एवं निष्क्रमण-द्वार सर्वथा पृथक् होना चाहिए। यही बात पाठशालाओं पर लागू होनी चाहिए। औषधालय आदि भी पृथक् होने चाहिए। तात्पर्य यह है कि मुख्य भवन सर्वथा शान्त, स्वच्छ एवं पवित्र होना चाहिए और आर्य उपदेशकों का निवास-

स्थान भी, ताकि उनके स्वाध्याय आदि में किसी प्रकार का व्यवधान न पड़े। आर्यसमाज पर सुन्दर ध्वज लहराता हो और एक पुरोहित तथा सेवक की नियुक्ति हो। यज्ञ, हवन की सारी सामग्री-अच्छे आर्य-गीतों के ग्रामोफोन रिकार्ड तथा अच्छा साहित्य प्रयोग तथा विक्रय के लिए प्रत्येक आर्यसमाज में अवश्य रहना चाहिए।

दक्षिण तथा अहिन्दी प्रदेशों में प्रचार का स्वरूप

१५. दक्षिण भारत में आर्यसमाज का मंच बनाने के लिए हमें वहाँ के कुछ योग्य शिक्षित व्यक्तियों को वैदिक सिद्धान्तों का ऊँचा प्रशिक्षण देकर उन-उन प्रदेशों की भाषा के माध्यम से प्रचार करना चाहिए। आर्य-अनार्य और ब्राह्मण-अब्राह्मण के विवाद तथा इसाई मिशनों के वहाँ प्रबल होने से आर्य समाज के प्रचार का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिससे यह विवाद शान्त हो और वैदिक धर्म का छूआछूत-विरोधी तथा अन्धविश्वास-विरोधी सच्चा स्वरूप वहाँ की जनता के सामने आए। वहाँ के ब्राह्मणों के अधिक संस्कृतज्ञ तथा रूढ़िवादी होने के कारण आर्यसमाज के पण्डितों का भी अधिक शास्त्रज्ञ तथा कर्मकाण्डी होना नितान्त आवश्यक है। उत्तर भारत के आर्यसमाजी संसत्सदस्यों और नेताओं तथा बुद्धिजीवियों के मिशनों को भी वहाँ भेजने की व्यवस्था होनी चाहिए जिससे वहाँ की अधिक शिक्षित जनता से अधिकाधिक व्यक्तिगत सम्पर्क हो सके। भारतीय संस्कृति और हिन्दी के प्रचार के माध्यम से वहाँ की शिक्षण-संस्थाओं में प्रवेश अपेक्षाकृत अधिक सुकर हो सकता है। मोपला-विद्रोह के समय महात्मा हंसराज आदि के प्रयास से आर्यसमाज का जो कार्य केरल तथा दक्षिणी प्रदेशों में जारी हुआ था, यदि वह बन्द न हो जाता तो आज वहाँ आर्यसमाज का मंच सशक्त होता। इसाई मिशनों के पाँव वहाँ न जमते तथा तमिलनाडु में भारत तथा हिन्दी-विरोधी भावना इतनी उग्र न होती। इस समय केरल की आर्यन यूथ लीग के माध्यम से कार्य कर रहे श्री नरेन्द्र

भूषण को भरपूर आर्थिक सहायता तथा नैतिक समर्थन मिलना चाहिए और अन्य दक्षिणी प्रदेशों तथा बङ्गाल, महाराष्ट्र और गुजरात आदि में भी आर्यसमाज के मंच का इसी प्रकार विस्तार किया जाना चाहिए।

विदेशों और भारत की जन-जातियों पर विशेष ध्यान

१६. विदेशों में योग, भारतीय संस्कृति, हिन्दी तथा आयुर्वेद के विशेषज्ञों के रूप में आर्य समाजी प्रचारकों को वहाँ जाकर अंग्रेजी भाषा के माध्यम से वहाँ के मूल निवासियों के साथ घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित करना चाहिये। ऐसी अवस्था में ही आर्यसमाज स्वयं को अन्तरराष्ट्रीय कहने का अधिकारी बन सकता है, अन्यथा तो उसका स्वरूप केवल भारतीय ही कहलाएगा। भारत के 'हरे कृष्णा' जैसे नवीन तथा रामकृष्ण मिशन जैसे आर्यसमाज के समकालीन आन्दोलनों के यूरोप तथा अमेरिका में विकास की प्रक्रिया को समझकर आर्यसमाज को वहाँ कार्य करना चाहिए।

१७. अपने देश में भी जो तथाकथित आदिवासी तथा वन-वासी जनजातियाँ हैं, उनमें आर्यसमाज को अपने कार्य का विस्तार करना चाहिए। इसके लिए सरकारी सहायता की भी आवश्यकता है, जो कि 'वनवासी कल्याण समाज' आदि संस्थाओं के नाम से आर्यसमाज भी प्राप्त कर सकता है। इसके लिए सारे देश की हिन्दू जनता का ध्यान आकृष्ट करने के लिए आर्यसमाज को समय-समय पर 'देश बचाओ, धर्म बचाओ सप्ताह' आदि के नाम से देश-व्यापी सर्वदलीय सामूहिक आयोजन करने चाहिए, तभी आर्य-समाज के मंच का वहाँ भी विस्तार हो सकता है, जैसा कि पिछले कुछ समय से नागालैण्ड में प्रयास शुरू किया गया है। प्रायः यही बात अफ्रीकी मूल-निवासियों में प्रचार करने पर भी लागू होती है।

(२) प्रचारक वर्ग विभिन्न रूपों में

मञ्च के पश्चात् आर्यसमाज के प्रचारक की स्थिति पर दृष्टि-पात कीजिए। प्रचारकों के कई वर्ग हैं जैसे पुरोहित,

उपदेशक, भजनोपदेशक आदि। एक अन्य दृष्टि से ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी तथा संन्यासी आदि प्रचारक तथा प्रचारिका आदि। नियमित वैतनिक, अवैतनिक तथा स्वतन्त्र एवं अनियमित प्रचारक आदि।

आर्यसमाज का सबसे बड़ा दुर्भाग्य
संगठन में उपदेशक का कोई स्थान नहीं

आर्यसमाज का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि उसके संगठन में उपदेशक का कोई सम्मान नहीं है। केवल वही उपदेशक या विद्वान् यहाँ सम्मान पाने में सफल हुए हैं, जो आर्थिक दृष्टि से आर्यसमाज के वेतनभोगी नहीं बने तथा जिन्होंने नेतृवर्ग में अपना स्थान बना लिया। जिस प्रकार जैनों में तथा इसाइयों में उच्चतम धनी घरानों के युवक तथा युवतियाँ भी साधु तथा पादरी बननें में गौरव का अनुभव करते हैं तथा सभी गृहस्थ लोग उन्हें अपने श्रेष्ठ एवं पूजनीय मानकर उनके आगे झुकते हैं, वैसी स्थिति आर्यसमाज में नहीं है और न ही सनातन धर्म के उपदेशकों जैसी ही स्थिति आर्यसमाजी उपदेशकों की है। परिणाम स्पष्ट है। सभी वैतनिक उपदेशक हीनभाव एवं असन्तोष से ग्रस्त हैं। कई योग्य व्यक्तियों को संन्यासी बनने के बाद भी अपनी वृद्धावस्था या रुग्णावस्था में पुनः अपने पुत्रादि की शरण लेनी पड़ी। संन्यासी एवं महिला प्रचारिकाएं आर्यसमाज में गिनी-चुनी हैं। जो इस समय उपदेशक हैं, वे भी अपनी हीनावस्था के कारण अपनी सन्तानों को उपदेशक बनाने को तैयार नहीं। धनी बापों के बेटे कभी आर्यसमाज के प्रचारक नहीं बनते। वैतनिक उपदेशकों की संख्या पहले से सभी आर्य प्रतिनिधि सभाओं में बहुत घट गई है। उपदेशकों एवं पुरोहितों को आर्यसमाज के वकील एवं व्यापारी अधिकारी भाषण देने और संस्कार कराने के विषय में निर्देश देते हैं कि ऐसी बात कहो, ऐसी न कहो; संस्कार इतनी देर में करवाओ, इतनी देर न

लगाओ आदि। उत्सवों के समय लीडरों के चारों ओर जहाँ अधिकारी मक्खियों की तरह भिनभिनाते रहते हैं, वहाँ पण्डितों को कोई पूछता नहीं। नेता या मन्त्री के आते ही पण्डित जी को अपना भाषण वन्द करने का संकेत मिल जाता है और मन्त्री जी का प्रशस्तिगान आरम्भ हो जाता है। जब एक समाज के खाली मकान को किराये पर लेने के लिए एक पण्डित जी और एक आर्यसमाज के चपरासी ने आवेदन-पत्र दिया, तो आर्यसमाज के अधिकारियों ने चपरासी को अधिक उपयोगी मानकर मकान उसे दिया, अच्छे योग्य माने जानेवाले पण्डित जी को नहीं। इस प्रकार आर्यसमाज के संघठन में सबसे उपेक्षित एवं नगण्य प्राणी यदि कोई है, तो वह उपदेशक है। अच्छे-से-अच्छे योग्य पण्डित, शास्त्रार्थ महारथी, वक्ता के लिए भारत के बड़े-से-बड़े आर्यसमाज ३०० रु० मासिक से अधिक वेतन की तो कल्पना ही नहीं कर सकते। परिणामतः, आर्यसमाज को उपदेशक भी प्रायः ऐसे ही मिलते हैं, जिन्हें और कोई नौकरी नहीं मिलती; वे समय गुजारने के लिए उतनी देर तक उपदेशक, पुरोहित या भजनोपदेशक का धन्धा कर लेते हैं और कोई दूसरी नौकरी मिलते ही उपदेशकी या पुरोहिताई छोड़कर भाग जाते हैं। उनकी अपनी योग्यता का स्तर भी इसी अनुपात से होता है और पं० लेखराम जी द्वारा रचित ऋषि-जीवन-चरित में उद्धृत महर्षि दयानन्द के ये वचन उनपर अक्षरशः चरितार्थ होते हैं कि "धनियों के लड़के तो अंग्रेजी ने ले लिये, शेष गरीबों के लड़के संस्कृत के लिए रह गये, सो ये निरे बन्दर हैं, इनसे कुछ न होगा।" अतः आर्य समाज के प्रचारक का स्तर ऊँचा करने के लिए निम्न उपाय किये जाने चाहिए :—

उपदेशक का स्तर ऊँचा उठाने के कुछ उपाय

१. आर्यसमाज के समस्त प्रचारकों के वेतनमान न्यूनातिन्यून उसी योग्यतावाले अध्यापकों के वेतन के समकक्ष या उससे कुछ

अधिक ही निर्धारित किए जाने चाहिएँ। इसके साथ ही उनकी भविष्यनिधि, पेंशन, चिकित्सा-भत्ता, महँगाई-भत्ते आदि की इसी प्रकार से समानान्तर व्यवस्था की जाए।

२. आर्य सार्वदेशिक सभा या अन्य प्रतिनिधि सभाओं को सब प्रकार के उपदेशकों और पुरोहितों की न्यूनतम योग्यता का निर्धारण करना चाहिए और उसके अनुसार ही उनका वेतनमान निश्चित होना चाहिए। किसी के भी द्वारा ऊँचे स्तर की योग्यता प्राप्त कर लेने पर वेतनमान में भी तदनुसार वृद्धि होनी चाहिए। इन योग्यताओं के लिए विशेष पाठ्यक्रम के अनुसार उनकी मौखिक एवं लिखित परीक्षाओं का आयोजन होना चाहिए।

३. उनकी योग्यता-वृद्धि एवं प्रचार-प्रणाली-सुधार के लिए निश्चित अन्तर से प्रशिक्षण-शिविर आयोजित होने चाहिएँ और वहाँ सिद्धान्त-ज्ञान, योगाभ्यास एवं चिकित्सा आदि का उन्हें कुछ प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। आधुनिकतम मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों की जानकारी भी इन्हें करवाई जानी चाहिए और अधिकाधिक भाषाओं की भी, ताकि वे श्रोताओं पर अधिक प्रभाव डाल सकें। उन्हें बताया जाना चाहिए कि वे क्या प्रचार करें और क्या नहीं।

४. समस्त प्रचारकों की एक सूची सभा के पास रहनी चाहिये और जो भी समाज पुरोहित रखें, उसकी अनुमति सभा से लें और सभा की अनुमति के बिना उसे हटा न सकें। उसके कार्य के असन्तोषजनक होने पर सभा उसका स्थानान्तरण कर दे और केवल उसी अवस्था में उसे हटायें, जबकि उसकी अयोग्यता पूर्णतः प्रमाणित हो जाए और वह अपने आचरण का सन्तोषजनक स्पष्टीकरण न दे सके। सभा में भी उपदेशकों का समस्त नियन्त्रण ऐसे प्रचाराधिष्ठाता के हाथ में रहे जो स्वयं भी विद्वान् उपदेशक हो। वही उपदेशकों की योग्यता का निर्णय करे, केवल लीडर नहीं। उपदेशक-प्रचारक-पुरोहित, सामान्यतः, विवाहित ही होने चाहिए।

५. पूर्वोक्त व्यवस्था के अनुसार समाजों के कार्यक्रम ऐसे रखे जाएँ कि उपदेशकों को व्यर्थ की लम्बी थका देनेवाली यात्राएँ न करनी पड़ें और उनकी दिनचर्या आदर्श के साँचे में ढल सके।

६. संस्कारों पर पुरोहित को जो नकद दक्षिणा मिले, उसपर भी समाज का ही अधिकार समझा जाए या पुरोहित की ओर से उसे समाज को दान माना जाए और उसकी घोषणा भी पुरोहित समाज को दान की तरह ही उसी समय करे और समस्त राशि की रसीद यजमान को मिले।

७. पुरोहित के ज़िम्मे केवल याजनाध्यापन-संस्कार आदि तथा आनेवाले विद्वान् अतिथियों की देखभाल करने का ही काम रहे; सफ़ाई, चन्दा उगाहने आदि का नहीं।

८. उपदेशक जब उत्सवों पर जाएँ, तो उनके खान-पान की व्यवस्था का न्यूनतम स्तर सभा निर्धारित करे। मैंने ऐसे उदाहरण भी देखे हैं कि उपदेशक दूध पीना चाहते हैं और मन्त्री जी चाय ही पिलाने पर उतारू हैं या डालडा घी ही खिला रहे हैं या सूखी रोटी ही।

९. किसी भी सभा-समाज में, आर्यसमाज के कार्यालय में या किसी भी आर्य के घर जाने पर पुरोहित या उपदेशक का खड़े होकर स्वागत-सत्कार होना चाहिए और आदरसहित दूसरे अभ्यागतों से, चाहे वे कितने भी बड़े क्यों न हों, उनका परिचय करवाया तथा उन्हें सम्मानप्रद स्थान अर्पित किया जाना चाहिए।

१०. महिलाओं में प्रचार के लिए योग्य महिला उपदेशिकाओं की भी नियुक्ति की जानी चाहिए और उनके शिक्षण के लिए महिलाओं के ही निर्देशन में एक "आर्य उपदेशिका विद्यालय" की स्थापना की जानी चाहिए या फिर योग्य आर्य भावनाओंवाली सुशिक्षित महिलाओं को अल्पकालीन प्रशिक्षण द्वारा ही प्रचार के लिए तैयार किया जाना चाहिये।

११. आर्यसमाज के सिद्धान्तानुसार केवल योग्य विद्वान् ब्राह्मणों को ही संन्यास का अधिकार है। इस नियम का आर्य-समाज में अब उल्लंघन हो रहा है। अनेक योग्य आर्य विद्वान् तो संन्यास धारण नहीं करते और उसके अयोग्य भोजनभट्ट दल-बाज लोग आर्य संन्यासी बन बैठे हैं। इस क्षेत्र में सार्वदेशिक सभा को उचित व्यवस्था करनी चाहिए और योग्य व्यक्तियों को संन्यास धारण करने की प्रेरणा कर उनके निर्देशन में,आर्यसमाज के प्रचार-कार्य का संचालन करना चाहिए।

१२. वैतनिक आर्य प्रचारकों की कमी को पूर्ण करने के लिये जो आर्य विद्वान् विभिन्न शिक्षण-संस्थाओं में कार्य कर रहे हैं, उनकी एक देशव्यापी विस्तृत सूची तैयार कर उनसे प्रचार-कार्य में सहायता लेनी चाहिए और उनके प्रशिक्षण के लिए भी ग्रीष्मावकाश में वेद-शिविर, दर्शन-शिविर, दयानन्द-साहित्य-शिविर आदि की योजना करनी चाहिए और योग आदि का शिक्षण भी दिया जाना चाहिए। उनके पारिश्रमिक की भी उचित व्यवस्था की जानी चाहिए।

१३. आर्य वीर दलों, आर्य बाल सभाओं, कुमार सभाओं, युवक समाजों, आर्य बाला सभाओं आदि के संचालकों के लिए भी पृथक्-पृथक् प्रशिक्षण-पाठ्यक्रम निर्धारित होने चाहिएँ, ताकि उन क्षेत्रों में कार्य करनेवाले प्रचारक उनकी रुचियों और मनो-वैज्ञानिक वृत्तियों के अनुसार उपयोगी ढंग से उन्हें आर्य सिद्धान्तों और आर्य रीति-नीति-आचार आदि से परिचित करा सकें।

१४. आर्य भजनोपदेशकों के लिए भी संस्कृत एवं आर्य-सिद्धान्तों का ज्ञान उपदेशकों एवं पुरोहितों के समान अनिवार्य किया जाना चाहिए। सभी प्रचारकों को अधिकाधिक भाषाएँ सीखने की प्रेरणा की जानी चाहिये।

१५. विभिन्न आर्यसमाजों में निवास करनेवाले वानप्रस्थियों के लिए प्रतिवर्ष कुछ समय के लिये आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर

आदि में स्वाध्याय एवं साधना-शिविर आदि की अनिवार्य व्यवस्था की जानी चाहिए।

१६. गत दिनों एक अमेरिकन विद्यार्थी ने अल्पकाल के लिए जैन अर्हत् की दीक्षा ली थी। इस सम्भावना पर विचार किया जाना चाहिये कि क्या आर्यसमाज में भी सावधिक वानप्रस्थ तथा संन्यास आदि का प्रचलन किया जा सकता है, जब कि योग्य आर्यजन वानप्रस्थी तथा संन्यासी का संयत आदर्श जीवन बिताते हुए कुछ समय के लिये प्रचारार्थ देशाटन करें। इससे जीवन की सांध्य-वेला में उन्हें नियमित संन्यास लेने तथा पालन करने की भी प्रेरणा और उत्साह प्राप्त होगा।

१७. बहुत ऊँची दक्षिणा लेकर स्वतन्त्र रूप से आर्यसमाजों में प्रचार करनेवाले उपदेशकों को बुलाने की प्रथा को हतोत्साहित किया जाना चाहिए, परन्तु यह बात सभाओं द्वारा आने वाले उपदेशकों का बहुत ऊँचा स्तर बन जाने पर ही सम्भव है।

उत्तम उपदेशक विद्यालय और उसके सहयोगी अन्य केन्द्रों की रूपरेखा

१८. आर्य प्रचारकों को तैयार करने के लिए जितने भी उपदेशक-विद्यालय हैं, वे सब अत्यन्त अपंग हैं। प्रत्येक सभा अपना एक पृथक् उपदेशक-विद्यालय खोलने को उत्सुक रहती है, चाहे उससे उसमें कुछ व्यवस्था हो सके या न हो सके। दो-चार सौ घटिया पुस्तकें, टटपूंजिये या संख्या में बहुत कम अध्यापक, ५-७ कक्षा पढ़कर घर से भागे हुए या गरीबी के कारण उनमें प्रविष्ट हुए विद्यार्थी, घटिया रहन-सहन, खाने-पीने की व्यवस्था होने तथा स्नातक बन जाने पर आजीविका का अभाव—यह स्वरूप है आर्यसमाज के उपदेशक-विद्यालयों का। वहाँ उनको बोलना ऐसा सिखाया जाता है कि वे स्वयं दो अक्षर जाने बिना भी सारी दुनिया के विद्वानों को शास्त्रार्थ की चुनौती देते और उनकी आलोचना करते

हैं। यह प्रवृत्ति आर्यसमाज जैसी श्रेष्ठ विद्याप्रचारक संस्था के लिए अत्यन्त अशोभनीय एवं घातक है। सार्वदेशिक सभा को चाहिए कि वह सभी उपदेशक-विद्यालयों की स्वामिनी सभाओं से वार्ता करके उन सब विद्यालयों को बन्द करवा दे और गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ या फिर टङ्कारा में एक केन्द्रीय उपदेशक-विद्यालय की स्थापना मुसलमानों के देवबन्द के मदरसे के ढंग पर करे। सब सभाओं का उसमें कुछ प्रतिशत भाग हो, और उसकी व्यवस्थापिका सभा में सब-का प्रतिनिधित्व। एक विशाल पुस्तकालय वहाँ हो और सब विषयों के १-२ चुने हुए आर्य विद्वान् हों। विभिन्न भाषाओं के प्रशिक्षण की भी वहाँ व्यवस्था हो और विद्वानों के ठहरने की भी उत्तम व्यवस्था, चाहे वे विद्वान् किसी भी सम्प्रदाय के क्यों न हों। वहीं पर केन्द्रीय अनुसन्धान संस्थान होना चाहिए और समय-समय पर वहाँ विद्वद्-गोष्ठियाँ हों। स्नातक एवं स्नातकोत्तर परीक्षा-उत्तीर्ण विद्यार्थी वहाँ लिये जाएँ और उपदेशक बनने पर उन्हें पूर्वोक्त वेतन-मान दिये जाएँ। इससे एक तो उनकी शिक्षा के पूर्ण उपकरण एक स्थान पर उपलब्ध होंगे; दूसरे, उस विद्यालय में यदि विद्यार्थी थोड़े भी हों, तो भी कोई कठिनाई या अतिरिक्त आर्थिक व्यय-भार उसके चलाने में इसलिए नहीं होगा कि नियुक्त विद्वान् अपना अनुसन्धान-कार्य जारी रखेंगे ही। साथ ही विद्वानों के आवास एवं उनकी गोष्ठियों की व्यवस्था से विद्यार्थियों को अत्यधिक लाभ होगा। उधर अनुसन्धान-साहित्य के मुद्रण, लेखन, प्रूफ-रीडिंग आदि कार्यों में विद्यार्थियों का सहयोग प्राप्त होगा तथा उन्हें इस कार्य का अनुभव होगा। इस प्रकार 'एक पंथ, अनेक काज' वाली कहावत चरितार्थ होगी। इस दृष्टिकोण से मैंने अपने एक लेख में, जो सार्वदेशिक पत्र में छापा नहीं गया, सार्वदेशिक सभा की इस योजना को कि वैदिक अनुसन्धान का केन्द्र बम्बई में होगा, एक उपदेशक-विद्यालय बंगलौर में और एक हैदराबाद में तथा एक केन्द्रीय पुस्तकालय दिल्ली में, सर्वथा अव्यावहारिक एवं अनुपयोगी

बताया था। यह ऐसी ही बात है कि किसी व्यक्ति का सिर कहीं पड़ा हो, धड़ कहीं; हृदय कहीं और मस्तिष्क कहीं तथा हाथ-पाँव कहीं। जैसा माननीय पं० नरेन्द्र जी ने बताया कि हमें बम्बई में इस अनुसन्धान-केन्द्र के लिए एक ऐसा स्थान दान में प्राप्त होगा जिसके किराये से इसका सारा व्यय भी निकल आयेगा, यदि ऐसी बात हो, तो भी, या तो इस पूरे भवन को इसी कार्य के निमित्त घोषित कर इसकी सारी आय को टंकारा या गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में स्थित विद्यालय एवं अनुसंधान-केन्द्र पर व्यय किया जा सकता है—ऐसा करने से अनुसन्धान-केन्द्र के लिये आरक्षित की जानेवाली उस भवन की मंजिल का बम्बई में किराया भी बहुत अधिक मिल सकेगा और केन्द्र के टंकारा या इन्द्रप्रस्थ में स्थित होने से उसपर किराये का कोई भार नहीं पड़ेगा; अथवा, यदि बम्बईवाले व्यक्ति केन्द्र के केवल बम्बई में होने पर ही यह स्थान देने को तैयार हों, तो फिर 'भागते चोर की लंगोटी ही सही' के अनुसार ये सारे कार्य बम्बई में ही शुरू कर दिये जाएँ। मेरा दृढ़ विश्वास है कि इन सब गतिविधियों के एक ही स्थान पर केन्द्रित होने से ही ये सब एक-दूसरे की पूरक बनकर पूर्ण सफल हो सकती हैं, अन्यथा नहीं। बम्बई के दानी महानुभावों को भी इस स्थिति पर भलीभाँति विचार करके इसके बम्बई में ही स्थापित कराने का आग्रह छोड़ देना चाहिए और फिर साथ ही इसी कार्य के निमित्त यह विशाल भवन तैयार करवाकर उसके किराये की पूरी आय इसी उद्देश्य के लिए समर्पित कर देनी चाहिये। इसी कार्य में सारे आर्य-जगत् एवं बम्बई के आर्यों की शोभा एवं भलाई है।

१६. अधिकाधिक भारतीय एवं प्रमुख विदेशी भाषाओं में उपदेशक तैयार किये जाने चाहिएँ, ताकि वे उन-उन प्रान्तों तथा देशों में ग्राम-ग्राम में जाकर सामान्य जनता से उसकी अपनी भाषा में सम्पर्क स्थापित कर सकें।

२०. जो आर्य अध्यापक शिक्षण-संस्थाओं में अध्यापन-कार्य करते हैं,वे जहाँ शिक्षण-संस्थाओं से बाहर आर्यसमाज के मंच से उसके प्रचार में सहायक हो सकते हैं, वहाँ वे अपने अध्यापन के माध्यम से भी अपने छात्रों के सामने आर्यसमाज का दृष्टिकोण प्रस्तुत कर सकते हैं। उन्हें इस बात की प्रेरणा देने के लिए उनका एक संघटन तैयार किया जाना चाहिए। इसो बात को लक्ष्य में रखकर हमने 'आर्य-बुद्धिजीवी परिषद्' की स्थापना की है, ताकि सब बुद्धिजीवी मिल-कर योजनाबद्ध रूप से आर्यसमाज के प्रचार में योगदान कर सकें।

(३) श्रोता वर्ग

अब मंच के तीसरे घटक श्रोताओं को लीजिये। श्रोताओं की योग्यता एवं मनोवृत्तियों के आधार पर कई कोटियाँ होती हैं। पुरुषों से महिलाओं की मनोवृत्ति, योग्यता तथा कार्यक्षेत्र पृथक् होते हैं। इसी प्रकार बहुत छोटे बच्चों, आठवीं तथा हाई-स्कूल तक और महाविद्यालयों के विद्यार्थियों तथा स्नातकोत्तर कक्षाओं एवं शोध-छात्रों तथा उच्च कोटि के रिसर्च-स्कालरों एवं प्राध्यापकों के स्तर एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न होते हैं। ग्रामीणों एवं नागरिकों और फिर भारतीयों और विदेशियों में भी बहुत अन्तर होता है। ये अन्तर इस प्रकार अनेक तरह के हैं। मंच की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि हमारा प्रचार मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उस-उस स्तर के श्रोताओं के अनुरूप हो—भाषा की दृष्टि से भी और विषय की दृष्टि से भी।

हमारे मंच का एक दोष, जिसका सङ्केत पूर्व किया गया है, यह है कि वहाँ आनेवाले मध्यम या निम्न-मध्यवर्ग के, कुछ बड़ी प्रौढ़ आयु के, सामान्य शिक्षाप्राप्त हिन्दीभाषी व्यक्ति ही हैं। आर्य-समाजों के सत्सङ्गों या उत्सवों में समझदार नवयुवक विद्यार्थी एवं उच्च शिक्षाप्राप्त व्यक्ति नहीं आते और महिलाएँ भी अपेक्षाकृत या तो बहुत कम आती हैं, या आती ही नहीं। मुझे स्वयं अनेक

आर्यसमाजों के कार्यक्रमों और विशेषकर साप्ताहिक सत्संगों में जाने से कुछ अरुचि-सी होने लगती है, और कई बार भाषण करने का उत्साह फीका पड़ जाता है, यह देखकर कि केवल कुछ वृद्ध पुरुष ही बैठे हैं, जिनके सारी आयु भाषण सुनते-सुनते बाल पक गये हैं और फिर भी वे वहीं हैं, जहाँ कि पहले थे। अब उन्हें क्या सुनाया जाए और कार्य करने की, आर्यसमाज को नई दिशा देने की, उन्हें क्या प्रेरणा दी जाए !

स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज नें एक बार अपना भाषण आरम्भ करते हुए अपने श्रोताओं को यों सम्बोधित किया था, "ऐ मेरे रण्डुए आर्य भाइयो ! आप कहेंगे, मैंने आपको 'रण्डुए' कैसे कहा ? अरे भाई ! यदि आप घर-गृहस्थी होते तो एक ओर आपकी माताएँ, बहनें और देवियाँ बैठी होतीं और एक ओर आपके बच्चे बैठे होते। पर यहाँ तो आप अकेले ही बैठे हैं, तब मैं आपको रण्डुए न कहूँ तो क्या कहूँ ?" कितनी सचाई है इन शब्दों में ! मैंने अपने कार्यक्षेत्रवाले कई स्थानीय आर्यसमाजों के अधिकारियों से कितनी ही बार निवेदन किया है कि आप रविवार के कार्यक्रम के प्रपत्र (Forms) छपवाकर रखिये। प्रत्येक रविवार का कार्यक्रम, जिसमें वक्ता का नाम एवं उसके भाषण का निश्चित विषय भी लिखा गया हो, अपने नगर की शिक्षण-संस्थाओं, सार्वजनिक स्थानों तथा बार-रूम आदि में भिजवाइये, ताकि लोगों को पता चलता रहे, परन्तु इधर किसी को भी ध्यान देने की फुर्सत ही नहीं है। एक ओर ता यह अवस्था है कि सब वर्गों के श्रोता हमारे यहाँ आते नहीं और दूसरी ओर जो भूले-भटके आ भी जाते हैं, तो उन्हें कोई अच्छा भाषण सुनने को नहीं मिलता और अधिकारियों के व्यवहार का कोई अच्छा प्रभाव उन-पर नहीं पड़ता। वक्ता महोदय बिना यह देखे, कि उनके श्रोता कौन हैं और वे उनकी बात समझ भी रहे हैं या नहीं, अपना धुआँधार

भाषण देते चले जाते हैं और उससे पूर्व यज्ञ एवं सम्मिलित गान के समय वृद्ध महानुभाव, बिना किसी के साथ मिलकर बोलने की चिन्ता किये, अपनी धुन में मस्त, अतिविलम्बित गति से, वेद-मन्त्रों एवं भजनों का, उबा देनेवाली लम्बी टोन में गान करते चले जाते हैं। उच्चारण में शुद्धि की चर्चा न करना ही श्रेयस्कर है। वक्ता के बोलने के समय, जितने भिन्न-भिन्न राजनैतिक दलों से सम्बद्ध लोग आर्यसमाजों के अधिकारी बने बैठे हैं, वे पहले ही उसे चेतावनी दे देते हैं कि उसे कौन-सी बात कहने से परहेज़ करना है। कहीं वक्ता ने उनकी अनिष्ट बात कही तो फिर वहीं महाभारत शुरू हो जाता है और श्रोता लोग छिः-छिः करते हुए खिन्न होकर समाज से उपेक्षा-वृत्ति धारण कर लेते हैं। एक समाज में तीन-चार बार सपत्नीक जाने का उपक्रम किया, तो पाया कि हर बार शान्ति-पाठ के होते या हवन के समाप्त होते ही अधिकारियों में लम्बी तू-तू मैं-मैं शुरू हो जाती। अन्ततः जो दो-तीन महिलाएँ वहाँ आती थीं, वे कहती सुनाई पड़ीं कि क्या हम यह झगड़ा देखने आती हैं? यहाँ आना ही व्यर्थ है।

आर्यसमाजों के कार्यक्रम विविध प्रकार के और रुचिकर हों

आर्यसमाज के सम्यक् प्रचार के लिए यह आवश्यक है कि उसके कार्यक्रम ऐसे हों कि सभी प्रकार के श्रोता रुचि-पूर्वक उनमें आएँ और सब कुछ-न-कुछ उपयोगी ज्ञान और अच्छा प्रभाव लेकर घर वापस जाएँ। इसके लिए आर्यसमाजों के अधिकारियों को समाज के कार्यक्रमों में अपने सब सदस्यों को सपरिवार आने की प्रेरणा देनी चाहिए और कार्यक्रम रोचक और विवाद आदि से सर्वथा रहित होना चाहिए। दूसरे, पूर्वोक्त कथन के अनुसार विशेष-विशेष वर्गों के लिए विशेष प्रकार के कार्यक्रम पृथक्-पृथक् आयोजित करने चाहिएँ और उन्हीं-उन्हीं के योग्य विषयों में निपुण विशिष्ट वक्ताओं के भाषण करवाने चाहिएँ। समाज के सब वर्गों के लोगों को उनके मुहल्लों में जाकर आर्यसमाज के कार्यक्रम में आने का

निमन्त्रण देना चाहिए और उनके मुहल्लों में भी प्रचार की व्यवस्था करनी चाहिए। बालकों के आकर्षण के लियें विभिन्न प्रकार के लेख, भाषण, गायन, चित्र-निर्माण आदि की प्रतियोगिताएँ आयोजित कर उन्हें पारितोषिक देने चाहिएँ। समाजों में भिन्न-भिन्न आयुसमूह के बालकों, बालिकाओं तथा महिलाओं आदि के लिए भिन्न-भिन्न संघटन बनाने चाहिएँ। आर्यसमाजों में 'सत्यार्थ-प्रकाश' आदि की परीक्षाओं का आयोजन करना चाहिए। विशिष्ट नागरिकों के लिए विशिष्ट भाषण एवं विचार-गोष्ठियों का भी आयोजन समाजों में होना चाहिए, ताकि वे नागरिक समस्याओं तथा अन्य विषयों के सम्बन्ध में आर्यसमाज के दृष्टिकोण पर खुलकर विचार कर सकें और उसे समझकर तदनुसार नगरों तथा ग्रामों के वातावरण-सुधार के लिए प्रयत्नशील हो सकें।

औषधालय और छात्रावास

आर्यसमाजों में खुले औषधालयों में नियुक्त चिकित्सक भी अपने रोगियों को खान-पान तथा रहन-सहन आदि के सम्बन्ध में आर्यसमाज की विचारधारा से परिचित करवाते रहें। अब आर्यसमाजों को आर्य-छात्रावास खोलने की ओर भी ध्यान देना चाहिए। आज विद्यालयों की अपेक्षा इन छात्रावासों के छात्रों पर आर्यसमाज का प्रभाव अधिक डाला जा सकता है। इस प्रकार आर्यसमाज के मंच का सब वर्गों तक विस्तार किया जाना चाहिए और मानव-जीवन के सभी पक्षों पर जनता का मार्ग-दर्शन आर्यसमाज को करना चाहिए।

(४) मंच से प्रचार के विषय

अब प्रश्न है कि आर्यसमाज के मंच से प्रचार किन विषयों का किया जाए? एक बार प्रसिद्ध गोभक्त लाला हरदेवसहाय जी ने श्री प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु जी तथा मुझसे बातचीत में कहा था कि यह आर्यसमाजियों का साहस ही है कि वे वेद-प्रचार

के नाम से संगृहीत धन से कैसा वेद-प्रचार करते हैं। यह एक कटु सत्य है कि आर्यसमाज के मंच से अधिक समय उन बातों की आलोचना में लगाया जाता है, जिनका सब आर्यसमाजी अबाध रूप से आचरण करते हैं और कुछ बातें तो उनमें स्पष्ट रूप से ऋषि-सम्मत भी हैं। महर्षि दयानन्द ने गृहस्थ को दाढ़ी-मूँछ साफ करवाने का आदेश दिया है पर अनेक भजनोपदेशकों को मैंने ऐसे लोगों की स्त्रियों या हीजड़ों से तुलना करते देखा है। अब कोई बताये कि ये उपदेशक महोदय ठीक हैं या ऋषि दयानन्द ? इसी प्रकार पैंट-कोट-टाई पहनना, खड़े होकर पेशाब करना, चोटी न रखना, लड़कियों का दो चोटी रखना, हाथ में घड़ी बाँधना, चाय पीना, सिनेमा-नाटक देखना, रेडियो सुनना आदि ही अधिकांश में उनकी आलोचना का विषय रहते हैं, जबकि व्यवहार में सभी आर्यसमाजियों के परिवार-जन ऐसा करते हैं। परिणाम यह है कि आर्यसमाज का प्रचार एक तमाशा, उपहास और औपचारिकता मात्र बनकर रह गया है, जिसका वास्तविक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है और न उसे कोई आर्यसमाजी गम्भीरता से लेता है। आज आर्यसमाज को यह देखना होगा कि वह या तो अपने समस्त सदस्यों पर अनिवार्य रूप से इन कार्यों के विरुद्ध करने या न करने पर प्रतिबन्ध लगा दे या अपने मंच से इस निरर्थक प्रचार को बन्द कर दे और उसे गम्भीर तथा परिष्कृत बनाये। आज आर्यसमाजी स्वयं तो सब पैंट आदि पहनते हैं, सिनेमा देखते हैं, चाय पीते तथा उपदेशकों को भी वही पिलाना और डालडा खिलाना चाहते हैं, पर यदि कोई पुरोहित या उपदेशक ऐसा करे तो उससे 'लाल कपड़े से बैल की तरह' बिदकते हैं। प्रश्न है कि यदि ऋषि ने धोती पहनना लिखा है तो सभी आर्यसमाजियों के लिए लिखा होगा, न कि केवल उपदेशक के लिए लिखा है। यदि कहें कि उपदेशक को तो आदर्श स्थापित करना चाहिये, तो क्या आपका कभी उस आदर्श को स्वयं धारण करने का विचार

हैं ? असलियत यह है कि अधिकांश शिक्षित आर्यसमाजी व्यवहार में चोटी को पिछड़ेपन का चिह्न मानते हैं और इसलिए उसे स्वयं न अपनाकर केवल उपदेशक के लिए उसे आरक्षित रखना चाहते हैं, ताकि वे उसपर अपना रौब गाँठ सकें। यही बात उपरिनिर्दिष्ट सभी आचरणों पर लागू होती है। ये बातें कोई धर्म का मूल तत्त्व नहीं हैं कि प्रचार का सारा बल इन्हीं पर लगाया जाए। अतः आर्यसमाज के मंच को महर्षि दयानन्द का और धर्म का मंच बनाने के लिए निम्न उपाय बर्ते जाने चाहिएँ।

धर्म-प्रचार का मंच बनाने के कुछ उपाय

(१) आर्यसमाज के मंच पर जो भी वक्ता आए, उसके भाषण का विषय पूर्व से निश्चित एवं घोषित होना चाहिए। वह भाषण सर्वथा विषय से सम्बद्ध, प्रमाण-पुरस्सर तथा सिद्धान्तानुसार होना चाहिए। हर भाषण के बाद उसपर श्रोताओं से प्रश्न आमन्त्रित किये जाने चाहिएँ।

(२) सार्वदेशिक सभा को भाषणों के उपयुक्त विविध विषयों की सूची घोषित करनी चाहिए, ताकि वक्ता उनमें से ही अपने भाषणों के विषय चुन सकें।

(३) वक्ता को पूरी तैयारी के साथ मंच पर आना चाहिए और आर्यसमाजों को उसे उचित पारिश्रमिक देने की व्यवस्था करनी चाहिए।

(४) भाषण प्रायः आर्य-ग्रन्थों के विषयों को आधार बनाकर ही होने चाहिएँ और वर्तमान काल में उनकी उपयोगिता एवं महत्त्व का दिग्दर्शन कराया जाना चाहिए।

(५) सत्यार्थ-प्रकाश, आर्य-समाज का कार्य एवं इतिहास, वैदिक राजनीति, समाज-शास्त्र, अध्यात्म-शास्त्र, योग, आर्यसमाज के नियम आदि विषय तथा वेद-मन्त्रों की सुसङ्गत व्याख्या आदि पर विशेष बल दिया जाना चाहिए। वेद-मन्त्र-व्याख्या के नाम पर

अनर्गल, असम्बद्ध एवं कपोल-कल्पित प्रलाप बन्द होना चाहिए। पं० इन्द्र जी ने खेदपूर्वक लिखा है कि आर्यसमाज में धर्म और अध्यात्म पर अधिकारपूर्वक बोल सकनेवालों की कमी है। यह कमी दूर होनी चाहिए। अखबारी भाषण भी बन्द हों।

(६) आर्यसमाज के उत्सवों में व्याख्यानों के विषय निश्चित हों। अब से कई वर्ष पूर्व, सम्भवतः आर्यसमाज बिरला लाइन्स, दिल्ली का ही एकमात्र ऐसा कार्यक्रम मेरे देखने में आया था, जिसमें क्रमशः आर्यसमाज के १० नियमों पर विभिन्न विद्वानों के १० व्याख्यान निश्चित किये गये थे। इसी प्रकार विभिन्न वेदों, दर्शनों, उपनिषदों तथा सत्यार्थप्रकाश के समुल्लासों पर व्याख्यान रखे जा सकते हैं।

(७) उत्सवों पर विभिन्न सम्मेलनों तथा उनमें राजनैतिक नेताओं के भाषणों की प्रथा बन्द कर दी जानी चाहिए या फिर उनमें चुने हुए आर्य वक्ताओं के तत्तद्विषयक भाषण ही होने चाहिएँ। भ्रष्ट राजनैतिक नेताओं की प्रतिष्ठा एवं उनके भ्रष्ट या 'गङ्गाजी गये गङ्गादास' वाले भाषणों से आर्यसमाज की प्रतिष्ठा समाप्त हो गयी है। उन्हें तो आर्य विद्वानों के भाषण सुनने के लिए बुलाया जाना चाहिए, न कि उनके भाषण जनता को सुनवाने के लिए। यदि वे कोई विद्वत्तापूर्ण भाषण देना चाहें तो दें या आर्यसमाज की मान्यताओं पर विचार प्रकट करें, पर उनके आगमन से आर्य-उपदेशकों के सम्मान एवं प्रतिष्ठा को कोई ठेस नहीं पहुँचनी चाहिये। वैसे तो उनकी आलोचना करते रहना और सम्मेलनों में सदा उन्हीं को बुलाकर पुष्पमाला पहनाना और भाषण करवाना ही हास्यास्पद है।

(८) आर्यसमाज के अनेक भजनोपदेशक प्रायः ग्रामों में और कहीं-कहीं नगरों में भी कल्पित किस्से सुनाने को ही आर्यसमाज का वेद-प्रचार कहते हैं। रामायण-महाभारत के विषय में भी अनेक

इधर-उधर के कवियों की कल्पनाएँ वे सुनाते हैं। इन्हें बन्द कर सिद्धान्त की कसौटी पर पूरे उतरनेवाले प्रामाणिक तथ्य ही रखे जाने चाहिएँ।

(९) द्वेष फैलानेवाली मत-मतान्तर-सम्बन्धी आलोचना भी बन्द कर अत्यन्त संयत एवं सभ्य ढंग से अपना पक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाना चाहिए, न कि दूसरों को चिढ़ाने का। हमारा उद्देश्य उन लोगों को अपने निकट लाना है, न कि दूर भगाना। अतः मतमतान्तरों की ठोस सैद्धान्तिक सौहार्दपूर्ण समालोचना ही की जानी चाहिये।

(१०) अशिक्षित या अल्पशिक्षित उपदेशकों ने आर्यसमाज के सम्बन्ध में भूतकाल में कई प्रकार की भ्रान्त धारणाएँ फैला दीं। वे तर्क करते-करते कुतर्क और अतितर्क तक पहुँच गये। प्रचार की गम्भीरता लुप्त होकर वह मनोरंजन का साधन बन गया। अब आर्यसमाज के प्रचार को पूर्णतः तर्क तथा श्रद्धा-समन्वित बनाया जाना चाहिए जिससे जहाँ अनावश्यक तथा हानिकारक झाड़-झंखाड़ दूर हों, वहाँ उपयोगी पौधे नष्ट न होने पाएँ।

(११) श्रोताओं के व्यावहारिक जीवन में काम आनेवाली उपयोगी बातों पर अवश्य पूरा बल दिया जाना चाहिए जैसी बातें कि महर्षि दयानन्द ने 'सत्यार्थप्रकाश' के दूसरे से छठे और दसवें समुल्लासों तथा व्यवहार-भानु आदि पुस्तकों में लिखी हैं।

(५) प्रचार की शैली

अब प्रचार-शैली पर भी कुछ विचार करना चाहिए। महर्षि दयानन्द ने जब प्रचार किया, उस समय पाखण्ड अपनी चरम सीमा पर था। पुराणों पर आक्षेप करने का किसी हिन्दू को साहस न था। उन्होंने जो बातें कहीं, उनका उत्तर पौराणिकों तथा अन्य मतावलम्बियों के पास उस समय नहीं था। फिर महर्षि का अपना व्यक्तित्व बड़ा महान् था, अतः दूसरे लोगों को उनकी

बातें उसी प्रकार सुननी और माननी पड़ीं, जैसे कि किसी छोटे व्यक्ति को बड़े व्यक्ति द्वारा पिलाई गई डाँट कान दबाकर सुननी पड़ती है और अपना आचरण सुधारना पड़ता है या डॉक्टर के आगे अपना फोड़ा कटवाने के लिए आत्मसमर्पण करना पड़ता है। महर्षि की बातों का विपक्षियों पर प्रभाव पड़ा, उन्होंने अपना आचरण बदला, अपनी मान्यताएँ बदलीं और महर्षि दयानन्दकृत आलोचना के प्रकाश में अपने ग्रन्थों की व्याख्याएँ बदलकर उनके समर्थन में नई युक्तियाँ सोचीं और महर्षि की आलोचना को अनुचित बतलाया। उधर आर्यसमाजी प्रचारकों का वह व्यक्तित्व न रहा। अतः इन परिवर्तित परिस्थितियों का मुकाबला यदि हम महर्षि दयानन्द की शैली से करना चाहें तो यह हमारी निपट मूर्खता का ही परिचायक होगा। महर्षि के अस्त्र से काम लेने के लिए वैसा ही शत्रु चाहिए और वैसा ही महर्षि जैसा महान् व्यक्तित्व। जब वह परिस्थिति नहीं रही, तो वह शैली भी नहीं चल सकती। हाँ, मूल सामग्री ऋषि-ग्रन्थों की खान में भरी पड़ी है, पर उसे अब हमें उपयोग के अनुरूप ढालना होगा। कैसे ?

कटु खण्डन की अपेक्षा मंडन पर अधिक बल

(१) अब तक सत्यार्थप्रकाश के पहले दस समुल्लासों की अपेक्षा पिछले चार समुल्लासों के प्रचार पर अधिक बल दिया गया है, अब प्रथम दस समुल्लासों की शिक्षाओं के आधार पर हमें खण्डनात्मक के स्थान पर मण्डनात्मक शैली अपनानी चाहिए और जनता को अन्य सम्प्रदायों की अपेक्षा वैदिक धर्म की विशिष्टताओं का बोध कराना चाहिए।

(२) जहाँ खण्डन की आवश्यकता हो, वहाँ वह खण्डन मृदु वाणी में और तटस्थ भाव से होना चाहिए जैसे कि आप निष्पक्ष रूप से सत्यासत्य का स्वरूप जनता के समक्ष रख रहे हैं और आपको किसी के प्रति किसी भी प्रकार का द्वेष-भाव नहीं है। इससे

आर्यसमाज की विचारधारा को अन्य मतावलम्बी भी शान्त भाव से सुनकर तदनुसार स्वयं को ढाल सकेंगे। हर आर्यसमाजी प्रचारक का स्वयं को डॉक्टर मानकर खण्डन-कुठार से दूसरों का ऑपरेशन करने का अधिकारी मान बैठना उसका अनधिकार चेष्टा है। जब तक दूसरों को अपने से उसमें बहुत अधिक विशिष्ट योग्यता एवं महानता दिखाई न पड़ेगी, तब तक वे उसके इस खण्डनरूपी प्रहार को सहने या स्वीकार करने को तैयार न होंगे, जैसे कोई भी व्यक्ति अपने ही जैसे आचरण के व्यक्ति से अपनी आलोचना सुनकर उससे प्रभावित होने की बजाय उलटा उससे लड़ने-भिड़ने को ही तत्पर हो जाता है। एक बार गुड़गाँव की एकता-समिति के कार्यक्रम में मैं और एक भजनोपदेशक महोदय गये। मन्त्री ने कहा कि खण्डन की बातें न कहना। इसपर मेरे साथी ने तो बोलने से ही इन्कार कर दिया कि ऋषि दयानन्द हमें तो खण्डन की जो कैंची दे गये हैं, वह अवश्य सबसे पहले चलेगी और उसके प्रयोग के बिना आर्यसमाज का प्रचार कैसा? मैंने खण्डन न करना स्वीकार किया और एकता के मूलभूत विषय को लेकर एक उपास्य 'ओम्', एक धर्मग्रन्थ 'वेद', मानव की एकता, वेद के सबको पढ़ने का अधिकार, वर्ण-व्यवस्था एवं शुद्धि आदि सभी विषयों का वर्णन महर्षि दयानन्द के नाम के साथ ३-४ भाषणों में किया, जिनमें मूर्तिपूजा, अवतारवाद आदि का खण्डन भी परोक्षरूप से आ गया। उस समिति के कार्यकर्ताओं में से एक धूर्त पौराणिक ने मेरे दूसरे भाषण के बाद मुझे बार-बार ऋषि दयानन्द का नाम न लेने की बात कही, तो उसी मन्त्री ने यह बात जानकर मुझसे कहा कि आप जैसा चाहें, वैसा बोलिए। जब मेरे तीसरे और चौथे शुद्धि के भाषण पर भी उसने आपत्ति की, तो समिति के दूसरे अधिकारियों ने उससे क्रुद्ध होकर कहा कि उसे समिति से ही निकाल देंगे और हम कल घोषणा ही कर देंगे कि यह समिति है ही आर्यसमाजियों की। इस प्रकार उस पौराणिक को

मुँह की खानी पड़ी और जहाँ मेरे सर्वप्रथम जाने पर पौराणिक कीर्तन हो रहा था, वहाँ तीन दिन आर्यसमाज पर खूब शान से भाषण हुए। यदि खण्डन-शैली ही अपनाने पर मैं भी जोर देता तो आर्यसमाज का कुछ भी प्रचार वहाँ सम्भव नहीं था। इस प्रकार डी०ए०वी० कॉलेज भटिण्डा में महर्षि दयानन्द पर भाषण के बाद जब एक सिख लड़के ने महर्षि दयानन्द द्वारा गुरु नानक के सम्बन्ध में प्रकट किये गये विचारों पर प्रकाश डालने की माँग की, तो मैंने अखण्डनात्मक शैली में ही महर्षि दयानन्दकृत खण्डन का ऐसा समर्थन किया कि सब सिख लड़कों ने बाद में पूछने पर अपना पूर्ण सन्तोष व्यक्त किया। अन्यत्र भी मैंने महर्षि दयानन्दकृत खण्डन के समर्थन में अनेक ऐसे भाषण कॉलेजों तथा आर्यसमाजों में दिये हैं, जिन्हें सुनकर आर्य महानुभावों ने प्रशंसात्मक टिप्पणी की है कि ऐसे भाषण गैर-आर्यसमाजियों में भी कराये जाने चाहिएँ, ताकि महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज के सम्बन्ध में उनमें व्याप्त भ्रान्तियाँ दूर हो सकें। इसी शैली में कई बार मैंने 'शिक्षा का आदर्श' विषय को लेकर राजकीय विद्यालयों में मूर्तिपूजा तक का खण्डन किया है और आर्यसमाजी अध्यापकों ने भी अवसर मिलने पर फिर आने का आग्रह किया है। अतः मेरा विश्वास है कि यदि हम इस शैली को लेकर बुद्धिमत्तापूर्वक आर्यसमाज के पक्ष को जनता के समक्ष रखें, तो उसका प्रचार और लोकप्रियता खूब बढ़ा सकते हैं। दूसरों के मान्य महापुरुषों के प्रति अपमानजनक शब्द नहीं कहे जाने चाहिएँ।

(३) यदि हम दूसरों का खण्डन करने और शास्त्रार्थ की चुनौती देने के बजाय महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों का विश्व के अन्य महान् व्यक्तियों के सिद्धान्तों के साथ तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत करें, तो अनायास ही आर्यसमाज की श्रेष्ठता का सिद्धान्त प्रतिपादित हो जाता है और उच्च शिक्षित लोगों पर आर्यसमाज

की छाप पड़ने तथा उसके कार्यक्रमों में उनका आकर्षण एवं रुचि बढ़ सकती है। आवश्यक है कि हमारे भाषण विश्व-जानकारी से भरपूर एवं ठोस हों। केवल भावनाओं को उभारनेवाले भावात्मक भाषणों का प्रभाव चिरस्थायी नहीं हो सकता। इस प्रकार हमारे भाषण व्याख्यात्मक, विश्लेषणात्मक या आलोचनात्मक, परिचयात्मक तथा तुलनात्मक आदि मण्डनपरक शैली में अधिक होने चाहिएँ, खण्डनपरक शैली में नहीं।

(४) सर्वत्र श्रोताओं के मनोविज्ञान एवं उनके बौद्धिक स्तर तथा सामाजिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर ही उनकी समझ में आनेवाली भाषा, भाव-भङ्गिमा, स्वर-तारतम्य तथा प्रवाह या वार्तालाप-शैली में ही भाषण होने चाहिएँ।

काल्पनिक और इतिहासविरुद्ध भाषण न हों

(५) हल्की, काल्पनिक, इतिहासविरुद्ध एवं प्रमाणहीन बातें नहीं कही जानी चाहिएँ। इससे आर्यसमाज की प्रतिष्ठा को भारी आघात पहुँचता है और उसकी गम्भीरता एवं प्रामाणिकता सन्दिग्ध हो जाती है। हमारे कुछ प्रचारकों ने ज्योतिष का ज्ञान न होने के कारण अपने प्रचार में ब्राह्मणों को चोर कहकर पुकारा, क्योंकि वे तिथियों में घटा-बढ़ी करके कभी चतुर्दशी की त्रयोदशी तथा कभी पूर्णमासी आदि कर देते हैं। एक प्रचार के अनुसार महर्षि ने विक्टोरिया को पत्र लिखा तथा दूसरे के अनुसार एक आर्यसमाज ने उसके यहाँ हवन करवाया। एक लेखक के अनुसार मद्रास में स्वामी जी के भाषणों पर पाबन्दी लगा दी गई थी, तो दूसरे के अनुसार महर्षि द्वारा वेद का प्रमाण माँगे जाने पर राजा राममोहन-राय ने उपनिषद् प्रस्तुत कर दिये थे। आर्यसमाज के एक विख्यात भावुक वक्ता के अनुसार १९०२ में स्वर्गीय स्वामी विवेकानन्द ने एक बार अमरीकियों पर उनके विमान उड़ा सकने की सामर्थ्य पर व्यंग्य किया था। इन बातों की प्रामाणिकता का यह हाल है कि

स्वामी जी कभी मद्रास में प्रचारार्थ गये ही नहीं। राजा जी जब १९३३ में मरे तो महर्षि की आयु केवल ८-९ वर्ष थी, जबकि पहली बार विमान राइट-बन्धुओं ने परीक्षण के रूप में सन् १९०४ में उड़ाया और वह भी केवल१२० फुट तक उड़ सका। ये सब बातें वक्ताओं तथा लेखकों के अज्ञान या कल्पनाओं का परिणाम हैं। महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में महर्षि दयानन्द विषयक भाषण, वाद-विवाद व निबन्ध-प्रतियोगिताओं, विद्वद्गोष्ठियों(Seminars), सत्यार्थ-प्रकाश आदि के पत्राचार-पाठ्यक्रमों एवं परीक्षाओं, विद्वानों के भाषणों (Extension Lectures), और दयानन्द-पीठों (Chairs) तथा अन्य विभागों के माध्यम से प्रस्तुत आर्यसमाज-विषयक शोध-प्रबन्धों द्वारा आर्यसमाज के मंच एवं साहित्य में प्रामाणिकता एवं श्रेष्ठता का सन्निवेश किया जाना चाहिए।

(६) चित्र-प्रदर्शनियों, रिकार्ड किये गये श्रेष्ठ गीतों तथा विद्वानों के भाषणों, डाक्यूमेण्ट्री फिल्म्स तथा चल-चित्रों के द्वारा भी आर्यसमाज का प्रचार किया जाना चाहिए। मैजिक लैण्टर्न का प्रयोग तो पूर्व से हो ही रहा है, पर बहुत कम।

संगीत और कीर्त्तन का महत्त्व

(७) आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संगों में संगीत का अभाव बहुत खटकनेवाली बात है। जो मामूली गीत आदि भजनोपदेशक प्रस्तुत करते भी हैं तो उनमें संगीत कम और बीच-बीच में भाषण एव व्याख्या बहुत होती है। होना यह चाहिए कि कुछ समय के लिए तो गीत-संगीत एवं कीर्त्तन की ऐसी धारा बहे कि व्यक्ति सब-कुछ भूलकर प्रभु-भक्ति में मग्न हो जाए। अब तक मैंने एक बार गांधी-नगर या कृष्णा नगर, दिल्ली आर्यसमाज में ही ऐसा आयोजन देखा है, जहाँ कि कुछ समय के लिए सन्ध्या एवं भाषण के बीच में मधुर, भाव-पूर्ण गीतों को व्यवस्था थी। उसके लिए समाज ने एक संगीत-शास्त्री को साप्ताहिक व्यवस्था कर रखी है। समूह-गान भी हो

सकते हैं और एकल भी, पर संगीत साथ में होना चाहिये। विशेष अवसरों पर नगर-कीर्त्तन एवं प्रभात-फेरियाँ भी होनी चाहियें। रेडियो के माध्यम से भी वार्ताओं, वेद-मन्त्रों एवं उनके अर्थों के संगीतबद्ध प्रसारणों तथा काव्य की नवीन शैलियों का आयोजन भी उसी प्रकार होना चाहिए, जिस प्रकार अन्य मतावलम्बियों के प्रसारण समय-समय पर होते हैं। गत दिनों आर्य अनाथालय, दिल्ली के बच्चों द्वारा प्रस्तुत महर्षि दयानन्द विषयक एक सुन्दर कव्वाली आर्यवीर दल शिविर के समापन-समारोह पर सुनी थी, वैसे ही कार्यक्रमों के लिए आकाशवाणी के अधिकारियों से सम्पर्क किया जाना चाहिए।

सार्वदेशिक सभा में तो सन् १९४६ में अपना ब्राडकास्टिंग स्टेशन लगाने का प्रस्ताव भी आया था और श्री मदनमोहन सेठ को इसकी योजना प्रस्तुत करने का कार्य सौंपा गया था, फिर भगवान् जाने क्या हुआ !

कर्मकांड में एकता आवश्यक

(८) आर्यसमाज की कर्मकाण्ड-पद्धति में भी बहुत-से भेद हो गये हैं और सर्वत्र पृथक्-पृथक् प्रकार से यज्ञ-हवन, संध्या एवं विवाह आदि संस्कार करवाए जाते हैं जिससे कभी-कभी कोई अप्रिय विवाद भी खड़ा हो जाता है। सार्वदेशिक सभा को विवादास्पद विषयों का धर्मार्थ सभा से निर्णय करवाकर तदनुसार ही सारे आर्यसमाजों में उसी पद्धति से सारे कर्मकाण्ड तथा संस्कार करवाने का आदेश जारी करना चाहिए।

सार्वदेशिक सभा ने १९४४ में पौरोहित्य परीक्षा-पटल बनाकर उसके माध्यम से परीक्षाएँ लेने और फिर उन्हीं पुरोहितों से कार्य लेने के लिए समाजों को प्रेरित करने का निर्णय लिया था, पता नहीं, फिर वह क्यों क्रियान्वित नहीं किया जा सका।

आर्यसमाज का साहित्य

अब साहित्य के सम्बन्ध में चर्चा अपेक्षित है। इसके दो भाग मुख्य हैं—पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकाएँ। एक बार आर्यसमाज के एक शिष्टमण्डल से राष्ट्रपति राधाकृष्णन् ने पूछा था कि क्या कारण है कि Aryasamaj is nowhere in news, nowhere in literature? अर्थात् क्या कारण है कि आर्यसमाज कहीं समाचारों में नहीं है, कहीं साहित्य में नहीं है ? आज अमेरिका आदि से कई भाषाओं में हरे कृष्णा आन्दोलन, बालयोगेश्वर के Divine Light Mission (डिवाइन लाइट मिशन) आदि के भी कई-कई पत्र-पत्रिकाएँ कई-कई लाख की संख्या में छपती हैं, पर आर्यसमाज की अन्य भाषाओं में तो क्या, हिन्दी में भी कोई उत्कृष्ट पत्रिका नहीं छपती। पुस्तकों की भी यही अवस्था है।

आर्यसमाज के साहित्य को गति देने के लिए अनिवार्य उसके सभी अंगों पर क्रमशः विचार करते हैं।

अनुसंधान-सामग्री का अभाव

लेखक—आर्यसमाज के साहित्य के निर्माण में लेखक के सामने जो समस्याएँ हैं, उनके समाधान की व्यवस्था आर्यसमाज को करनी चाहिये। सर्वप्रथम है किसी ऐसे केन्द्रीय पुस्तकालय का अभाव, जहाँ आर्यसमाज के सारे साहित्य—पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं—का संग्रह हो। पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति को आर्यसमाज का इतिहास लिखते समय भी यह कठिनाई आई थी और पुरानी पत्रिकाओं की बहुत कम फाइलें उन्हें मिली थीं। आर्यसमाजों में पत्रिकाओं की फाइलें रखने की ओर कोई ध्यान ही नहीं है। यदि भूल से कहीं कुछ पत्रिकाएँ रद्दी में पड़ी हों और किसी लेखक का ध्यान उनकी ओर चला जाये, तो फिर आर्यसमाजों को उनसे ऐसा लगाव होता

है कि वे किसी भी प्रकार उन्हें देने को तैयार नहीं होते, भले ही बाद में वे रद्दी में फेंक दी जायें। अब जब सार्वदेशिक सभा अनुसन्धान-केन्द्र खोलना चाहती है, तो उसे एक ऐसे व्यक्ति को नियुक्त करना चाहिये जो घूम-घूमकर समाजों के पुस्तकालयों से पुरानी पुस्तकों एवं पत्रिकाओं का संग्रह करे और उन्हें व्यवस्थित कर उनकी सूचियाँ बनाये। इसी आधार पर आर्यसमाज के सारे साहित्य की एक Bibliography (बिबलियोग्राफी) तैयार की जा सकती है। यह कार्य 'गुरुकुल काँगड़ी पुस्तकालय' द्वारा भी सम्पन्न किया जा सकता है।

लेखकों को पारिश्रमिक-पुरस्कार और ग्रन्थ-प्रकाशन-व्यवस्था

दूसरी समस्या है किसी के कार्य के मूल्याङ्कन की भावना का अभाव। यदि कोई विद्वान् वर्षों लगाकर कोई ऐसा कार्य करे भी, तो आर्यसमाज में उसका महत्त्व नहीं आँका जाता। अतः या तो कोई उसको प्रकाशित नहीं करेगा, अगर करेगा तो लेखक को कोई पारिश्रमिक तो देगा ही नहीं, उलटे उससे कुछ सहायता माँगेगा, भले ही वह स्वयं उससे कितना ही क्यों न कमाए। आर्यसमाज में भी कई पत्रिकाएँ ऐसी चल रही हैं जिनसे उनके स्वामियों को अच्छी आय होती है, पर फिर भी वे लेखकों को कभी नहीं देते, यहाँ तक कि कई बार तो उसके लेखवाला अंक भी नहीं। यही बात कुछ साहित्य-प्रकाशकों के साथ भी है। उत्तम साहित्य पर पुरस्कार आदि की व्यवस्था भी नगण्य-सी ही है। पं० गङ्गाप्रसाद उपाध्याय पुरस्कार तथा चौ० प्रतापसिंह ट्रस्ट करनाल ने इस दिशा में कुछ कदम उठाकर एक स्तुत्य कार्य किया है। पं० ठाकुरदत्त अमृतधारावालों ने भी कुछ ऐसी व्यवस्था की थी। अतः सभा को ऐसे विषयों की विस्तृत सूची प्रकाशित करनी चाहिए जिसपर कि विद्वान् ग्रन्थ लिखकर सभा को दें और सभा लेखक को अच्छा पारिश्रमिक दे या प्रतिवर्ष विशिष्ट विषय पर ग्रन्थ मँगाकर उनमें से सर्वश्रेष्ठ को पुरस्कृत

करने की व्यवस्था करे और उसे प्रकाशित करे। यदि ग्रन्थ कई बार छपे, तो लेखक को समुचित रॉयल्टी देने की व्यवस्था होनी चाहिए और लेखक की प्रकाशक द्वारा सम्भाव्य शोषण से रक्षा की जानी चाहिए। आदर्श स्थिति यह है कि आर्यसमाज का लेखक स्वतन्त्र लेखन, और वह भी उच्च कोटि के लेखन, के बल पर ही अपनी आजीविका अच्छी प्रकार चला सके और उसे अभावों का सामना न करना पड़े। यदि अच्छे लेखकों को आर्यसमाज की शिक्षण-संस्थाओं में स्थान मिल जाए और उनके अधिकारी उनपर अन्य कार्यभार कम-से-कम लादें या दयानन्द कॉलेजों में 'दयानन्द प्रोफैसर' के पद पर नियुक्त कर उन्हें साहित्यिक गतिविधियों के लिए ही नियत कर दें, तो यह समस्या काफी सीमा तक सुलझ सकती है। डी०ए०वी० महाविद्यालय, लाहौर ने अपने अनुसन्धान-विभाग द्वारा विश्वव्यापी स्थायी ख्याति प्राप्त की थी। यदि डी० ए० वी० कॉलेज, जालन्धर और हंसराज कॉलेज, दिल्ली जैसे कुछ बड़े कॉलेज चाहें, तो ऐसी व्यवस्था सरलता से कर सकते हैं। डी०ए०वी० कॉलेज, कानपुर बहुत छोटे-से स्तर पर इस कार्य का कुछ सञ्चालन करता है।

आर्य प्रादेशिक सभा ने स० धर्मानन्तसिंह की एक पंजाबी-पुस्तक 'वैदिक गुरमत' प्रकाशित की है। उसकी भूमिका में उन्होंने २-३ बहुत मनोरंजक घटनाएँ लिखी हैं, जिनका उल्लेख यहाँ करना अनुचित न होगा। उन्हें एक सज्जन ने कहा कि आप जो भी पुस्तकें मँगाना चाहें, उनका आदेश लन्दन की एक कम्पनी को कर दिया करें। एक सूची बनाई तो छः हजार रुपये की बैठी। अतः कुछ पुस्तकें काटकर सूची उन्हें दिखाई। उन्होंने पूछा, 'सरदार जी ! ये पुस्तकें काट क्यों दी हैं ?' 'अधिक मूल्य की हो गई थीं।' 'नहीं जी ! आप ये भी लिख दें, सब मँगा लें।' और सारी पुस्तकें आ गईं। एक दूसरे सज्जन उन्हें पुस्तकों की दुकान पर ले जाकर कहते थे, 'सरदार जी ! बढ़िया-बढ़िया पुस्तकें छाँटो।' उन सब पुस्तकों को लाकर दो-तीन

दिन उलटते-पलटते थे और फिर कहते थे, 'सरदार जी ! मुझे तो कुछ भी समझ आई नहीं, ये सब पुस्तकें आप ले जाओ ।' तीसरे सज्जन ने एक दिन कहा, 'आप जितनी पुस्तकें चाहो, ले जाओ । बारह वर्ष बाद लौटा देना ।' वह अस्सी पुस्तकें लाए और बारह वर्ष बाद लौटाईं । काश ! ऐसे कुछ महानुभाव आर्य विद्वान् साहित्य-कारों को मिलते रहें, तो उनकी एक बड़ी समस्या हल हो जाए ।

साहित्य की खोज और अनुसन्धान का विषय कितना कठिन है, इसकी एक घटना पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक ने सुनाई । एक दिन वह ऋषि दयानन्द के पत्र-व्यवहार के संग्राहक पं० मामराज जी के साथ ऋषि-पत्रों की खोज में किसी के घर गये । उसने उन्हें अपने बुजुर्गों की कागज़-पत्रों की कोठरी खोल दी । सारा दिन उसे टटोलते रहे, पर एक भी पत्र हाथ न लगा । मीमांसक जी कहते हैं, मैं तो उस एक ही दिन में निराश हो गया, पर मामराज जी ने तो इस कार्य में अपना जीवन ही लगा दिया । आज कितने आर्यसमाजी पं० मामराज की तपस्या से परिचित एवं उनक प्रशंसक हैं ?

वैदिक सिद्धान्तों के कई विषय अभी तक अछूते पड़े हैं

लेखन-कार्य कोई सरल कार्य नहीं है । आज अनेक विषय ऐसे हैं, जिनपर पुस्तकें लिखी जानी चाहिए थीं, पर छोटे लेख भी जिनपर नहीं लिखे गए । वेद पर ही उच्च कोटि का कितना साहित्य लिखा गया ? षडङ्गों पर कितने ग्रन्थ निकले ? आर्यसमाज का सर्वाङ्गपूर्ण इतिहास, ऋषि दयानन्द का विश्व की प्रसिद्ध जीवनियों की टक्कर का कोई जीवन-चरित, आयसमाज के साहित्य की पूरी सूची, सत्यार्थप्रकाश पर कोई सर्वाङ्ग सुन्दर आलोचनात्मक ग्रन्थ, महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज के सिद्धान्तों को लेकर जो शोध-प्रबन्ध पी-एच० डी० के लिए अब तक लिखे गए, उनमें से ही कितने अब तक अप्रकाशित पड़े हैं । जो छपे हैं, उनका रंग-रूप, साज-सज्जा कैसे हैं ? इनके लेखकों को क्या मिला है ? वे कितनी संख्या में छपे

तथा विके हैं ? अन्य विदेशी भाषाओं की तो बात छोड़िए, अंग्रेजी भाषा में अच्छे लेखक आर्यसमाज में कितने हैं ? सार्वदेशिक सभा की पत्रिका Vedic Light (वैदिक लाइट) का स्तर क्या है ? क्या इस साहित्य के बल पर विश्व में आर्यसमाज का प्रचार सम्भव है ? स्थिति निराशाजनक है। इसीलिए हमने 'आर्य बुद्धिजीवी परिषद्' की स्थापना की है कि ज्ञात-अज्ञात सब आर्यसमाजियों को एक सूत्र में आबद्ध कर प्रत्येक को उसकी सामर्थ्य के अनुसार काम सौंपें और इस प्रकार आर्यसमाज के साहित्य को एक गति और दिशा दें। विभिन्न विषयों के सम्पादक-मण्डल बनाये जाएँ, एक शोध-पत्रिका निकाली जाए और लिखे जाने योग्य सभी विषयों का चुनाव करके उनकी सामग्री के एकत्रित करने के कार्य पर उपयुक्त व्यक्तियों को लगाएँ, ताकि कार्य शीघ्र और अधिक विस्तृत हो। देखें, कहाँ तक सफलता मिलती है !

आर्य साहित्य के प्रकाशक

अब प्रकाशक की बात लीजिए

गीता प्रेस गोरखपुर ने अकेले जो साहित्य प्रकाशित किया है, उसपर पहले दृष्टि डालिए और फिर आर्यसमाज के साहित्य और उसके प्रकाशक देखिए। आर्यसमाज के पास ऐसा कोई प्रकाशन-गृह नहीं, जो व्यावसायिकता से ऊपर उठकर और विशाल स्तर पर आर्यसमाज के साहित्य-प्रकाशन का कार्य करे। रामलाल कपूर ट्रस्ट, सार्वदेशिक तथा अन्य सभाएँ जो कार्य करती हैं वह बहुत सीमित है। इतनी बात हर्षदायक अवश्य है कि हाल के कुछ समय में आर्यसमाज-शताब्दी के सन्दर्भ में थोड़ी जागृति अवश्य आई है और सार्वदेशिक सभा ने कुछ अच्छे ग्रन्थों का प्रकाशन अपने हाथ में लिया है; परन्तु सभा के पास कोई ऐसा मुद्रण-कला-विशेषज्ञ नहीं है जो सर्वाङ्ग सुन्दर ग्रन्थों का प्रकाशन करे। लेखक की दृष्टि से सभी प्रकाशक अनुपयुक्त हैं। दिल्ली के एक प्रकाशक ने इसी कार्य

में अपने आराम के लिए सभी आधुनिक उपकरण, यहाँ तक कि कार भी, जुटा रखे हैं, पर जब उसने पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड की एक पुस्तक 'वेदों का यथार्थ स्वरूप' छापी, तो लेखक को केवल ५-७ प्रतियाँ ही देने को तैयार हुए। सुनते हैं कि आर्य साहित्य मण्डल अजमेरवालों ने जब पं० जयदेव शर्मा के चारों वेदों का भाष्य छापा तो उससे अच्छा पैसा कमाया, पर लेखक को मिला शायद चार आने प्रतिमन्त्र भाष्य का पारिश्रमिक। इस प्रकार कुल ५००० रु० ही लेखक को मिला होगा। वैदिक यन्त्रालय का प्रकाशन अत्यन्त सीमित है और वह केवल ऋषि-ग्रन्थों को भी माँग के अनुसार नहीं छाप सकता।

प्रकाशकों की असफलता के कारण

मुद्रण एवं सम्पादन में अनेक त्रुटियाँ रहती हैं। इन असफल प्रकाशकों की असफलता के कुछ कारण निम्नलिखित हैं :—

१. पुस्तकों की छपाई, गेट-अप आदि शुद्ध और सुन्दर नहीं हैं। एक-आध को छोड़कर मुद्रण-कला का प्रायः अभाव है।

२. साहित्य भी सामान्य कोटि का है—कुछ ही समय जीवित रहनेवाला।

३. प्रकाशक प्रायः आर्यसमाजी ग्राहकों पर ही आश्रित हैं। वे उस साहित्य को सार्वजनीन बनाने का कोई प्रयास नहीं करते। वे प्रसिद्ध पत्रों एवं पत्रिकाओं में विज्ञापन आदि नहीं देते। प्रकाशक-संघों के सदस्य नहीं हैं तथा प्रकाशकों तथा प्रकाशनों की सूचियों में उनका और उनके प्रकाशनों का नाम नहीं छपता और न उनकी पुस्तकों की समीक्षा ही सामान्य पत्रिकाओं में निकलती है। बड़े-बड़े पुस्तक-विक्रेताओं से भी वे सम्पर्क नहीं करते और न ही शिक्षण-संस्थाओं के अधिकारियों से, जिससे उनकी पुस्तकें पुस्तकालयों में तथा पारितोषिक-योग्य पुस्तकों की सूचियों में नाम पाएँ। विदेश के या अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के देशी पुस्तक-विक्रेताओं तथा बुक-

स्टालों, हाकरों आदि से भी उनका सम्पर्क नहीं है। आर्यसमाज की पत्रिका कोई ऐसी है ही नहीं [एक जनज्ञान को छोड़कर] जो बुक-स्टालों पर स्थान पाने योग्य हो। आर्यसमाज भी पुस्तकालयों और वाचनालयों में ये पत्रिकाएँ और पुस्तकें नहीं मँगाते। कोई पुस्तक-विक्रेता ऐसा नहीं है जो आर्यसमाज का सारा साहित्य अपने पास रखता हो, क्योंकि आपस में उनका द्वेषभाव चलता रहता है, किसी आर्यसमाजी प्रकाशक की एजेंसियाँ विभिन्न नगरों में नहीं हैं और चलती-फिरती पुस्तकों की गाड़ी से सर्वत्र साहित्य पहुँचाने का प्रचलन भी आर्यसमाज में नहीं है। यदि ये सब विधियाँ अपनाई जाएँ, तो आर्यसमाज के साहित्य की बिक्री पर्याप्त सीमा तक बढ़ सकती है।

अब साहित्य की बात लीजिए। शिक्षित जनों तक आर्यसमाज की विचारधारा पहुँचाने के लिए अब भी अंग्रेज़ी ही बड़ा साधन है, देश में भी और विदेश में भी। अतः अच्छा अंग्रेज़ी साहित्य तैयार करवाया जाना चाहिए और छापने से पूर्व पारिश्रमिक देकर भी अंग्रेज़ी के प्रामाणिक विद्वानों से उनकी भाषा का परिष्कार करवाया जाना चाहिए। प्रयास किया जाना चाहिए कि अंग्रेज़ी के अतिरिक्त अन्य प्रमुख विदेशी भाषाओं में भी प्रतिवर्ष कुछ-न-कुछ साहित्य निकलता ही रहे और वह उस-उस देश के किसी पुस्तक-विक्रेता के द्वारा बिकता रहे। देश की सब प्रान्तीय भाषाओं में वह छपना ही चाहिए।

विविध प्रकार और विषयों पर साहित्य

आर्यसमाज में बाल-साहित्य, शोध-साहित्य, कथा-कहानी-साहित्य, अच्छा चित्र-कला-साहित्य, श्रेष्ठ काव्य-साहित्य बहुत कम है। बालकों की 'चन्दा मामा' जैसी कोई श्रेष्ठ पत्रिका और पुस्तक-माला, ऋषि के ग्रन्थों की अरविन्द-ग्रन्थावली जैसी सुन्दर ग्रन्थ-माला, इसी प्रकार आर्यसमाज के अन्य श्रेष्ठ विद्वानों की ग्रन्थ-मालाएँ,

शोध-परक उच्चकोटि का साहित्य, वेद-मंत्रों के भावों पर आधारित एवं आर्यसमाज के इतिहास से सम्बद्ध चित्रमाला-साहित्य प्रकाशित होना चाहिए। आर्य कथाकारों से आर्यसमाज के सिद्धान्तों पर कहानियाँ, उपन्यास लिखवाये जाने चाहिएँ। संस्कृत में भी साहित्य का सृजन होना चाहिये। आर्यसमाज के दृष्टिकोण से भारत का इतिहास, भारतीय संस्कृति का इतिहास, भाषा का विकास, सृष्टि का विकास, धर्म का इतिहास, स्वतन्त्रता-आन्दोलन, नारी-जागरण, अछूतोद्धार, हिन्दी आदि का इतिहास आर्यसमाज के दृष्टिकोण से लिखे जाने चाहिएँ, जो विश्वविद्यालयों के पाठ्यानुसार हों और विद्यार्थियों के काम आ सकें। इसी प्रकार आधुनिकतम वैज्ञानिक मान्यताओं के प्रकाश में आर्यसमाज की मान्यताओं पर प्रकाश डालनेवाला साहित्य चाहिए। इस शोध-परक साहित्य पर कुछ विस्तृत प्रकाश **'प्रकाश अभिनन्दन ग्रन्थ'** में प्रकाशित मेरे एक लेख में डाला गया है—वह द्रष्टव्य है। स्त्रियों के उपयुक्त एवं कुछ बड़े विद्यार्थियों के उपयुक्त भी पृथक् प्रकार का साहित्य चाहिये। महर्षि दयानन्द एवं आर्यसमाज के सम्बन्ध में देश-विदेश के विद्वानों द्वारा लिखे गये लेखों के संग्रह छपने चाहिएँ। लन्दन आदि में विद्यमान सरकारी रिकार्डों तथा स्विट्ज़रलैण्ड में श्याम जी कृष्ण वर्मा के पुस्तकालय की सामग्री की भी खोज होनी चाहिये। दयानन्द का शिक्षा-शास्त्री, राजनीति-शास्त्री, सुधारक, क्रान्तिकारी, आध्यात्मिक गुरु, राष्ट्रपुरुष आदि विभिन्न दृष्टियों से अध्ययन प्रस्तुत किया जाना चाहिये।

बिक्री का प्रबन्ध

इन पुस्तकों की बिक्री के लिए चलती-फिरती गाड़ी, स्थानीय एजेण्टों या समाजों, सभाओं के घूमते-फिरते एजेण्टों, कचहरियों, विद्यालयों, मेलों में हाकरों, पत्र-पत्रिकाओं में विज्ञापनों, आर्य-शिक्षण-संस्थाओं में पुरस्कारों, रविवार को घरों तथा अन्य दिन दुकानों पर

तथा बाज़ारों में जाकर बेचनेवाले स्वयंसेवकों और देश-विदेश के पुस्तक-विक्रेताओं से सहयोग लेना चाहिये। शिक्षण-संस्थाओं में सभी आर्य अध्यापकों के माध्यम से वहाँ के पुस्तकालयों में तथा पुरस्कारों में साहित्य रखवाने का प्रयास करना चाहिये। आर्यसमाजों में 'दयानन्द अध्ययन केन्द्र' चालू किये जाने चाहिएँ। सार्वदेशिक को एक श्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिका निकालनी चाहिये और सभी सभाओं के सदस्य आर्यसमाजों के दशांश के अतिरिक्त उसके शुल्क को भी अनिवार्य रूप से प्रान्तीय सभाओं के माध्यम से प्राप्त करना चाहिए। पारस्परिक विवाद की बातों से पत्रिकाओं को अछूता रखकर उनके लिये पृथक् पत्रक भेजने की व्यवस्था करनी चाहिये क्योंकि पत्रिकाओं में विवाद होने से वे गैर-आर्यसमाजी लोगों को दिखाये जाने के उपयुक्त नहीं रहतीं। विश्व के पुस्तकालयों एवं प्रसिद्ध व्यक्तियों के पास पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण तैयार करवाकर भेजा जाना चाहिये। भारत में रह रहे विदेशियों को अंग्रेज़ी के ट्रैक्ट निःशुल्क भेंट किये जाने चाहिएँ और उन ट्रैक्टों के पीछे चुनी हुई पुस्तकों की सूची होनी चाहिये। विदेशों में अपने एजेंटों के पते हर पुस्तक पर छपे हुए होने चाहिएँ। आर्यसमाजों के पुस्तकालयों के लिए प्रत्येक आर्यसमाज अपनी आय का दशांश व्यय करे—यह भी नियम बना देना चाहिये। आर्यसमाज का प्रत्येक सदस्य विवाह के अवसर पर उपहार में कुछ पुस्तकें दे—यह प्रेरणा हर आर्यसमाजी को की जाए। साथ ही आर्य शिक्षणालयों में केवल आर्यसमाज का साहित्य ही पुरस्कार में दिया जाए और पुस्तकालय में आर्यसमाज के साहित्य का सैक्शन अनिवार्य रूप से रहे।

आर्यसमाजी का व्यावहारिक जीवन

सैद्धान्तिक प्रचार के साधनों पर विचार कर चुकने के पश्चात् अब व्यावहारिक पक्ष पर विचार करना चाहिए।

आज आर्यसमाजियों का व्यवहार दूसरे जनों से कुछ भी भिन्न प्रकार का नहीं रह गया है, अतः उनका प्रभाव भी जनता पर नहीं पड़ता है। प्रत्येक आर्यसमाजी के जीवन के इन पक्षों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए; उनमें भी सामाजिक पक्ष पर पहले और वैयक्तिक पक्ष पर बाद में, क्योंकि दूसरे लोग व्यक्तिगत जीवन से नहीं, उसके सामाजिक जीवन से अधिक प्रभावित होते और उसी के अनुसार उसे अच्छा या बुरा मानते हैं। कर्मकाण्डी होना इतना महत्त्वपूर्ण नहीं, जितना कि आचारवान् होना। मनु ने इसीलिए कहा भी है 'सर्वेषामेव शौचानां अर्थशौचं परं मतम्' अर्थात् सब शुद्धियों में धन की शुद्धि बड़ी है; जो धन कमाने में शुद्ध है वही वस्तुतः शुद्ध है।

शुद्ध और कर्त्तव्यनिष्ठ

१. सब आर्यसमाजियों को 'व्यवहारभानु' के अनुसार अपनी-अपनी आजीविका के साधन में पूरी ईमानदारी बरतनी चाहिए। दुकानदार सब वस्तुओं के 'एक दाम' लें, शुद्ध वस्तु बेचें। सरकारी कर्मचारी अपना कर्त्तव्य पूर्णतः निभायें और रिश्वत न लें। सबसे शुद्ध व्यवहार हो। ऐसी दुकानों पर 'आर्यों की दुकान' के बोर्ड लगाए जाएँ और उसकी विशेषताएँ लिखी हों। किसी दुकान पर इस बोर्ड का लगा होना ही इसकी श्रेष्ठता का प्रमाण-पत्र माना जाये। यदि किसी को किसी आर्यसमाजी के व्यवहार से शिकायत हो तो उनकी शिकायत सुने जाने का प्रबन्ध आर्यसमाजों में हो।

जातिसूचक शब्द न लगाएँ

२. कोई आर्यसमाजी अपने नाम के साथ जातिसूचक शब्द न लगाये और किसी प्रकार की जातीयता की भावना अपने आचरण में न आने दे। गत दिनों अलवर के आर्य-महासम्मेलन में यह प्रस्ताव पारित तो हुआ, पर इसके बाद भी सार्वदेशिक सभा के

महामंत्री तक के नाम के साथ अपना जातिसूचक उपनाम वैसे ही प्रचलित है।

दहेज न लेने की प्रतिज्ञा

३. विवाह-सम्बन्धों के समय कोई आर्यसमाजी दहेज न ले। इस आशय की प्रतिज्ञा का प्रपत्र प्रत्येक आर्य-सदस्य से भरवाकर रिकार्ड में रखा जाए और चुनाव में खड़ा होने या मतदान करने के समय सब आर्य इस आशय के प्रपत्र पर अपने हस्ताक्षर करें कि उन्होंने इस प्रतिज्ञा का कभी उल्लंघन नहीं किया है।

विवाह जातपांत तोड़कर

४. यही बात विवाह-सम्बन्ध-निश्चय के समय जाति-विचार न करने की प्रतिज्ञा पर लागू होनी चाहिए और जाति-बन्धन तोड़कर विवाह करने-करानेवालों की सूचियाँ प्रत्येक समाज में लगी होनी चाहिएँ। आर्य-पत्रों में भी सजातीय विवाह की माँगवाले विज्ञापन कथमपि न छपने चाहिएँ।

५. सभा को प्रत्येक आर्य सभासद् एवं सदस्य का वर्ण निश्चित एवं घोषित करने की प्रथा की ओर ध्यान देना चाहिए और लड़का-लड़की के विवाह-निश्चय में इसके उपयोग की कोई विधि निकालनी चाहिए।

सादगी के साथ सामूहिक विवाह आर्यसमाज-मन्दिर में

६. अत्यन्त सादगीपूर्वक सामूहिक रूप से आर्यसमाज मन्दिरों में विवाह-संस्कार सम्पन्न करने-कराने की प्रथा का प्रचलन होना चाहिए। भाई परमानन्द ने अपनी कन्या का विवाह-संस्कार आर्य-समाज-मन्दिर में ही किया था। कहना नहीं होगा कि नामधारी एवं सन्त कृपालसिंह आदि के संघटन इस विषय में आर्यसमाज से अधिक प्रगतिशील हैं। आर्यसमाज को उनकी विधि से प्रेरणा लेनी चाहिये।

७. प्रत्येक आर्यसमाज में रात्रि-संस्कृत-पाठशालाएँ नियमित रूप से लगनी चाहिएँ ताकि प्रत्येक आर्य सदस्य कुछ-न-कुछ संस्कृत का ज्ञान अवश्य प्राप्त करे ।

हिन्दी-संस्कृत का ही व्यवहार

८. प्रत्येक आर्य सदस्य से इस आशय का प्रतिज्ञा-पत्र भी भरवाया जाये कि वह हर काम में और हर अवसर पर हिन्दी या संस्कृत का ही व्यवहार करेगा । मतदान के समय इस प्रतिज्ञा के पालन करने की घोषणा भी शपथ-पूर्वक की जानी चाहिये ।

आर्यसमाज की सदस्यता सर्वप्रथम

९. प्रत्येक सदस्य यह घोषणा भी करे कि किसी अन्य सभा, सोसाइटी या राजनैतिक दल के प्रति उसकी निष्ठा आर्यसमाज से दूसरे नम्बर पर ही होगी और वह आर्यसमाज के प्रचार और सिद्धान्त-पालन में किसी भी प्रकार बाधक न होगी । वह किसी भी स्थान पर आर्यसमाज की मान्यताओं के विरुद्ध प्रस्ताव या बात का समर्थन व प्रचार न करेगा ।

निर्वाचित व्यक्ति कहां तक आर्यत्वयुक्त

१०. चुनाव में जो लोग आर्यसमाजी के रूप में विजयी होकर संसद् व विधानसभाओं में जाएँ, उनसे नियमित रूप से यह जानकारी ली जानी चाहिए कि उन्होंने आर्यसमाज के उद्देश्यों की पूर्ति के हित वहाँ पर क्या कार्य किया है और उनके विपरीत क्या ।

वैदिक कर्मकाण्ड और घरेलू पुस्तकालय

११. प्रत्येक आर्य सदस्य अपने घर में वैदिक कर्मकाण्ड एवं अपने परिवार में आर्यत्व की भावना के लिए प्रचार करे । एतदर्थ अपने घरेलू पुस्तकालयों के निर्माण का आन्दोलन चलाया जाए । इससे आर्य-साहित्य के लेखन एवं प्रकाशन-कार्यक्रम को भी प्रोत्साहन मिलेगा ।

पंचमहायज्ञ

१२. पंचमहायज्ञों में अतिथियज्ञ का प्रचलन न होने से आर्य पुरोहितों एवं विद्वानों की समुचित सेवा का मार्ग अवरुद्ध हो गया है। उसके प्रचलन की प्रेरणा की जाए।

वैदिक परिवार निर्माण

१३. घरेलू वातावरण, रहन-सहन, खान-पान, साज-सज्जा आदि में आर्यत्व की छाप स्पष्ट दिखाई पड़नी चाहिए। मथुरा के तपोभूमि परिवार के श्री पं० ईश्वरीप्रसाद जी प्रेम तथा पं० धर्म-देव जी विद्यामार्तण्ड द्वारा संचालित वैदिक परिवार-निर्माण आन्दोलन इस दिशा में एक अच्छा प्रयास है।

शुद्ध वस्तु बिक्री भंडार और सेवा कार्य

१४. आर्य समाज को एक जीवन्त संस्था बनाने के लिए ऐसे निष्कलंक आर्यों की समिति प्रत्येक आर्य समाज में बनाई जानी चाहिए जो दुःखियों एवं पीड़ितों की प्रत्येक प्रकार से सहायता एवं सुनवाई करे और भ्रष्टाचार एवं मिलावट आदि के विरुद्ध संघर्ष करें। आर्यों के व्यवहार के विरुद्ध शिकायतों और उनके पारस्परिक विवादों की सुनवाई भी वह करे। निर्धन लोगों को कानूनी निःशुल्क सहायता उपलब्ध करवाने की भी व्यवस्था करे। यदि आर्य समाजें शुद्ध वस्तुओं के विक्रय भण्डार, दुग्धशालाओं आदि की व्यवस्था कर सकें, तो प्रचार का प्रचार और साथ ही आर्य समाजों को आर्थिक लाभ भी हो।

शतांश चन्दा और सभाओं में उपस्थिति अनिवार्य

१५. प्रत्येक आर्य के लिए अपनी आय का सही शतांश देना अनिवार्य किया जाए और साथ ही सत्सङ्गों एवं कार्यक्रमों में निश्चित उपस्थिति की भी कड़ाई से जाँच होनी चाहिए, ताकि भ्रष्ट अनार्य लोग समाज में न घुसने पाएँ। सरकारी कार्यालयों की

तरह प्रत्येक समाज के हिसाब-किताब की जाँच के लिए प्रान्तीय सभाओं को अपने लेखा-निरीक्षक भेजने चाहिएँ ।

भ्रष्टाचारी अधिकारी न बनें

१६. जिस भी आर्यसमाज या आर्य प्रतिनिधि सभा के किसी पदाधिकारी पर भ्रष्टाचार या पद-दुरुपयोग के आरोप लगें, उन की सार्वजनिक जाँच के लिए दोनों पक्षों और निष्पक्ष कुछ आर्य संन्यासियों या विद्वानों की समिति नियुक्त होनी चाहिए और उसके निर्णय की घोषणा सब आर्य-पत्रों के माध्यम से की जानी चाहिए ।

१७. कोई भी आर्यसमाज ऐसी आरम्भिक पाठशाला न खोले, जिसमें संस्कृत के व्यावहारिक एवं अनिवार्य शिक्षण की व्यवस्था न हो । महर्षि कृत 'संस्कृत वाक्य प्रबोध' जैसी व्यावहारिक संस्कृत की पाठ्य पुस्तकों से उसमें सहायता ली जाए ।

१८. ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि सब आर्यसमाज मन्दिर नित्य खुले रहें । उनके निरीक्षण के लिए सभा को अपने कर्मचारी नियुक्त करने चाहिए और जहाँ गैर आर्यसमाजियों ने अपना अधिकार जमा लिया हो, उनको निकाल बाहर किया जाना चाहिए और सच्चे आर्यों की तदर्थ समितियाँ वहाँ नियुक्त कर देनी चाहिएँ ।

छात्र-वृत्तियां और प्रतियोगिताएँ

१९. आर्यसमाजों को यथासम्भव निर्धन विद्यार्थियों के लिए कुछ छात्र-वृत्तियों की व्यवस्था करनी चाहिए । इस कार्य के लिए आर्यसमाज विषयक लेख, भाषण, वादविवाद आदि प्रतियोगिताओं की योजना भी की जा सकती है । कालेजों में समाज 'महर्षि दयानन्द चल विजयोपहार' प्रदान कर उनके सम्बन्ध में वार्षिक प्रतियोगिताएँ भी आयोजित करवा सकते हैं । दीक्षान्त समारोहों के अवसर पर महर्षि दयानन्द पर कोई अच्छी पुस्तक सब स्नातकों को दी जानी चाहिए ।

२०. ग़रीब विधवाओं आदि के लिए सिलाई-केन्द्र आदि भी आर्य समाजों में खोले जाने चाहिएँ, जिनसे उनका पालन-पोषण हो सके। अन्य रोजगारों की व्यवस्था भी यथासम्भव समाजों में की जानी चाहिए।

आर्यसमाजों का दैनिक कार्यक्रम

इस प्रकार इन उपायों से आर्यों के व्यक्तिगत जीवन और उससे उनके आर्यसमाज का जो रूप जनता की दृष्टि में उभरेगा, वह महर्षि दयानन्द के स्वप्नों का आर्य समाज होगा और स्थानीय आर्यसमाजें अपने-अपने नगर की धार्मिक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और आध्यात्मिक मुक्ति का कारण बन सकेंगे जैसीकि नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने कामना की थी। आर्य समाजें प्रातः की सन्ध्या और योग, व्यायाम, आर्य वीर दल की प्रातःकालीन शाखा आदि से अपना कार्य आरम्भ करें और दिन में सब सांसारिक एवं व्यावहारिक कार्यों द्वारा समाज की सेवा करती हुई रात्रि की कथा-वार्ता आदि से यदि अपने दैनिक कृत्यों का समापन करें, तो यह आर्यसमाजों की एक आदर्श व्यवस्था होगी। दैनिक धर्म चर्चा, दयानन्द अध्ययन केन्द्र, महिला सत्संग आदि के माध्यम से समाज में जनता के विभिन्न वर्गों की रुचि बराबर जगाए एवं बनाए रखी जा सकती है।

आर्यसमाज का संगठन और नेतृत्व

अब इस समस्त साहित्यिक एवं मौखिक प्रचार, व्यक्तियों एवं समाजों के व्यावहारिक जीवन तथा तीसरे शोषित-पीड़ितों और निर्धन अनाथों के उत्थान के कार्यों की धुरी है आर्यसमाज का संघठन एवं नेतृत्व जिसमें चुनाव-प्रणाली आदि भी सम्मिलित है, अब इसपर विचार करते हैं।

कोई भी संघठन देखिए, उसका केन्द्रबिन्दु कोई ऐसा महान् व्यक्ति होता है जो अपनें उत्कृष्ट गुणों, त्याग-तपस्या या फिर गुरुडम के आधार पर ही सही, अपनी संस्था के व्यक्तियों की अपने प्रति श्रद्धा जगाए रखता है और उनके कार्यों एवं गतिविधियों का निर्देशन, संचालन एवं नियन्त्रण बनाए रखता है। आर्यसमाज का यह दुर्भाग्य है कि उसका कोई एक ऐसा एकछत्र नेता नहीं है, जो सब आर्यसमाजियों की श्रद्धा का केन्द्र हो। वैसे धार्मिक संस्थाओं में कोई विरक्त व्यक्ति ही ऐसी श्रद्धा का भाव प्राप्त करने में अधिक सफल होती है। यद्यपि आर्यसमाज प्रजातन्त्र के आधार पर संघठित है, फिर भी आर्य सभासद् बनने की जो शर्तें हैं, उनके अनुसार यह प्रजातन्त्र योग्यता-निरपेक्ष नहीं है। महर्षि के शब्दों में एक वेदविद् आप्त, ज्ञानी विद्वान् का मत हज़ार मूर्खों के मत से बढ़कर मान्य है।

आर्यसमाज में घुसे प्रच्छन्न व प्रकट शत्रु

परन्तु आर्यसमाज की अनेकानेक संस्थाओं के वैभव से आकर्षित हो अनेक ऐसे लोग आर्यसमाज में घुस आए हैं जो गैर-आर्यसमाजी हैं या आर्यसमाज के प्रछन्न और यहाँ तक कि खुले शत्रु भी हैं और खुल्लम-खुल्ला उसकी मान्यताओं और उसके निष्ठावान् कार्यकर्ताओं का उपहास उड़ाते, अपमान करते और उन्हें हानि भी पहुँचाते हैं। शिक्षण संस्थाओं में विशेषकर घुसे हुए अनेक लोग उसी आधार पर आर्यसमाजों के सदस्य, सभासद् एवं प्रतिनिधि बनकर आर्यसमाज की मिट्टी पलीद कर रहे हैं। इनमें अधिकारी भी हैं और संस्थाओं के कर्मचारी अनार्य अध्यापक आदि भी। इस दोष को दूर करने के लिए आवश्यक है कि उसके सभासदों पर कुछ मोटे-मोटे ऐसे नियम लागू किए जाएँ जो आर्यसमाज से सहानुभूति न रखनेवाले लोगों में मिलने सम्भव न हों। ऐसे सभासदों को ही

अपनी संस्थाओं की कार्यकारिणी में लिया जाए और उन्हें ही सभाओं में प्रतिनिधि बनाकर भेजा जाए। ये नियम कुछ इस प्रकार हो सकते हैं।

आर्य संस्थाओं के अधिकारियों और सभासदों के लिए आवश्यक नियम

१. वे व्यक्ति संस्कृत के अच्छे जानकार हों और स्वाध्यायशील वक्ता, लेखक और समाज के कार्यकर्ता हों, उपदेशक, पुरोहित आदि का कार्य करवा सकने में समर्थ हों।

२. कर्मकाण्डी हों और आर्यसमाज के अध्ययन में रुचि रखनेवाले, सत्संग में श्रद्धा भाव से आनेवाले, विद्वानों और उपदेशकों के सान्निध्य में बैठ कर रस लेनेवाले हों।

३. सार्वदेशिक सभा आदि द्वारा संचालित सिद्धान्त-परीक्षाओं में बैठकर आर्यसमाज की अच्छी जानकारी रखते हों और आर्यसमाज में सक्रिय रुचि लेते हों। अन्य सभा-समाजों से अधिक सम्बद्ध न हों।

४. खान-पान, रहन-सहन आदि से आर्यसमाज के नियमों का पालन करते हों समाज के कार्यक्रमों में बराबर आते-जाते हों और घर में, मुहल्ले में आर्यसमाजी वातावरण की सृष्टि में रुचि लेते हों। आर्यसमाज को अच्छा दान आदि देते हों। पौराणिक पाखण्डों से दूर हों और आर्यसमाज की उपर्युक्त क्रान्तिकारी प्रगतिशील गतिविधियों के समर्थक एवं प्रेरक हों। चोरबाज़ारी आदि कृत्यों से बदनाम न हों।

इस प्रकार के जो सक्रिय आर्यसमाजी हैं, केवल हाथ उठाने वाले नहीं, जो आर्यसमाजों द्वारा आयोजित विभिन्न शिविरों, पाठ्य-क्रमों आदि में भी बराबर भाग लेते हों, केवल वे ही लोग समाजों के सभासद घोषित किए जाएँ। उन्हीं में से प्रतिनिधि सभाओं के सदस्य जाएँ। उनके द्वारा चुनी हुई कार्यकारिणी

प्रतिनिधि सभाओं का संचालन करे। प्रयास किया जाए कि कोई ख्यातनामा विद्वान, संन्यासी, वानप्रस्थी ही सभा का प्रधान बने, न कि कोई राजनीतिक नेता, दुकानदार, वकील या डॉक्टर। उसका कर्मकाण्डी, विद्वान, स्वाध्यायशील, सुशिक्षित लेखक या वक्ता होना अनिवार्य हो, जो विद्वानों की सभा में आर्यसमाज का प्रतिनिधित्व कर सके। वह अपनी कार्यकारिणी में भी उपर्युक्त गुणों से युक्त व्यक्तियों को ही ले। उसकी सार्वजनिक आलोचना करनेवाला व्यक्ति आर्यसमाज से निष्कासित कर दिया जाना चाहिए। उसपर कोई आरोप हों तो वह सार्वदेशिक सभा के प्रधान के पास भेजा जाना चाहिए, जो उसकी जाँच कर शिकायतकर्ता को सूचित कर सके। किसी समाज में अनियमितताओं, अधिकारियों पर लगे आरोपों की जाँच प्रान्तीय सभा का प्रधान करे और उसकी जाँच का कार्य सार्वदेशिक सभा का प्रधान।

विद्वन्मंडल द्वारा सार्वदेशिक सभा के प्रधान की नियुक्ति

सार्वदेशिक सभा के प्रधान के आचरण की जाँच के लिए आर्यजगत के दिग्गज ख्यातनामा, वेदविद्, दलबन्दी से दूर, विवाद से ऊपर, सुप्रतिष्ठित, अराजनीतिक, केवल आर्यसमाज के लिए समर्पित, सौम्यमूर्ति ८-१० व्यक्तियों की एक समिति हो, जो कानूनी वातों में अच्छे आर्य वकीलों या न्यायाधीशों की एक सहायता लें, पर निर्णय स्वयं करें। वे विद्वान सभा से किसी प्रकार का आर्थिक लाभ प्राप्त करनेवाले न हों। इस प्रकार के व्यक्तियों में आज स्वा० ब्रह्ममूर्ति जी, पं० उदयवीर जी शास्त्री, अमर स्वामी जी महाराज, आचार्य कृष्ण जी, स्वामी सत्यप्रकाश जी, पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड और आनन्द स्वामी जी जैसे निर्विवाद व्यक्तित्व हो सकते हैं। जो लोग प्रतिनिधि सभाओं से सदस्य चुनकर जाएँ, वे सार्वदेशिक सभा प्रधान को न चुनकर ऐसे एक विद्वन्मण्डल का चुनाव करें और फिर वह विद्वन्मण्डल सभा के प्रधान का

इस प्रकार सभा-प्रधान को चुनने और हटाने का अधिकार ऐसे विशुद्ध आर्यसमाजी विद्वन्मण्डल के हाथ में जाने से महर्षि का पूर्वोक्त कथन वस्तुतः चरितार्थ होगा। यह नियम भी बनाया जा सकता है कि वे किसी-न-किसी सर्वसम्मत व्यक्ति का ही चुनाव करें। अच्छा यह है कि वह सर्वसम्मति से चुना गया महाविद्वान ऐसा हो जो सभा-प्रधान चुने जाने पर संन्यास धारण कर इस पद को अलंकृत करे और पोप की तरह आजीवन इस पद पर रहे, जब तक कि दोषी पाये जाने पर वह उसी विद्वन्मण्डल द्वारा पदच्युत न कर दिया जाए। उसकी प्रतिष्ठा एवं अधिकार अखण्ड हों और वह केवल विद्वन्मण्डल के प्रति ही उत्तरदायी हो। सब प्रान्तीय सभाओं और समाजों के विवादों को अन्तिम अपील का स्थान वही हो और उसे दोषी पाये जाने पर किसी भी प्रान्तीय सभा के प्रधान एवं समस्त कार्यकारिणी तक को भङ्ग कर नये चुनाव कराने के लिए हो।

विद्वन्मण्डल के अधीन न्याय सभा का चुनाव

आर्यों एवं समाजों एवं सभाओं के झगड़े निबटाने के लिए वही न्यायसभा का संघटन कर सकता है, जिसमें अच्छे विधिवेत्ता हों। वही अपनी समस्त कार्यकारिणी का चुनाव करे। इस प्रकार उससे ऊपर केवल विद्वत्सभा हो, शेष सब उससे नीचे। इस प्रकार यदि प्रान्तीय एवं सार्वदेशिक दोनों सभाओं के स्तर पर प्रधान विद्वान हों और उनके प्रतिनिधि विशुद्ध स्वाध्यायशील, आर्य सिद्धान्तों के जानकार, तो आर्यसमाज का कायाकल्प हो सकता है। श्रेष्ठी आदि जनों को प्रधान सभा के प्रतिष्ठित सदस्य बनाकर उनका सहयोग ले सकता है, पर वे धनिक केवल उसको अपने सुझाव दे सकें, नीति-निर्धारण पर मत नहीं। वस्तुतः प्रधान की नीति-निर्धारण में सलाहकार, मतदान एवं उसके कार्यान्वयन में उसे वाध्य करनेवाली समर्थ शक्ति तो वह विद्वन्मण्डल ही होना चाहिए, शेष तो उसको प्रधान के आदेशानुसार कार्यान्वित करनेवाले ही

हों, वे कार्यान्वित करनेवाले अधिकारी एवं सहयोगी प्रान्तीय सभाओं से चुनकर आये सदस्यों में से हो सकते हैं या प्रधान द्वारा मनोनीत भी। प्रधान अधिकाधिक गुणसम्पन्न, अनेक भाषाविज्ञ, अनुभवी, देश-विदेश की संस्कृति, सभ्यता, घटनाओं का जानकार होना चाहिये और उसका आर्यसमाजों और व्यक्तियों पर पूर्ण नियन्त्रण होना चाहिये। जो संस्थाएँ उसके आदेश पर न चलें, वह उन्हें आर्यसमाज से असम्बद्ध घोषित कर दे, परन्तु विद्वन्मण्डल द्वारा निर्धारित आर्यसमाज की नीति के अन्तर्गत रहकर, अन्यथा उस संस्था की अपील पर विद्वन्मण्डल उसे पदच्युत कर सकता है। इस प्रकार जो संस्थाएँ दयानन्द के नाम से दयानन्द सिद्धान्तों की हत्या उसी के नाम से प्राप्त धन का सहारा लेकर कर रही है, वे या तो अपना व्यवहार सुधारेंगी, या फिर आर्यसमाजियों को और अधिक धोका न दे सकेंगी और महर्षि दयानन्द का नाम वदनाम न कर सकेंगी।

हिन्दी-अंग्रेज़ी में दैनिक पत्र

आर्यसमाजों का सार्वभौम रूप बनाने के लिए उसे एक दैनिक पत्र हिन्दी तथा अंग्रेज़ी में अवश्य निकालना चाहिए जिसके माध्यम से वह विश्व की प्रमुख समस्याओं पर अपना दृष्टिकोण व्यक्त कर सके। उसकी प्रतियां समस्य राष्ट्राध्यक्षों एवं संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रतिनिधियों को जानी चाहिएँ। सार्वदेशिक सभा को हिन्दी से अंग्रेज़ी में यह पत्र निकालने का संकल्प करना चाहिये और उसे प्रमुख पत्रों के स्तर पर पहुँचाना चाहिए।

विदेशी राष्ट्राध्यक्षों से युक्त राष्ट्र संघ से सम्पर्क

भारत में आनेवाले समस्त विदेशी राष्ट्राध्यक्षों को आर्यसमाज का साहित्य तथा 'मानव-अधिकारों का वैदिक घोषणापत्र' एक मैमोरेण्डम के रूप में देना चाहिये और संयुक्त राष्ट्र संघ से

बराबर इस विषय पर सम्पर्क बनाये रखना चाहिये। वैसे भी राजदूतों के माध्यम से यह भेजा जाये।

देश में चुनाव के समय घोषणापत्र जारी करना चाहिए

देश में भी चुनाव के समय आर्यसमाज को अपना 'चुनाव घोषणा पत्र' जारी करना चाहिये। जो प्रत्याशी शपथपूर्वक तदनुसार आचरण करना स्वीकार करें, और अपने पूर्व के तदनुसार आचरण के प्रमाण प्रस्तुत करें, सभा को उनका गम्भीर विश्लेषण कर आर्यों को उनका समर्थन करने का आदेश देना चाहिये तथा किसी दलीय भावना को बीच में न आने देना चाहिये। साथ ही जिसका आचरण विशेष आर्यसमाज विरोधी रहा हो, उसके विरोध का भी आदेश देना चाहिये। इसकी क्रियान्वित न करनेवाले को आर्यसमाज के समस्त पदों से पृथक् कर देना चाहिये। इस कार्य के लिए 'आर्य राजसभा' बनाई जा सकती है।

जो भारत की एकता एवं आर्यत्व की प्रबल विरोधी शक्तियाँ हैं, उनका केवल विरोध न कर उनसे आर्यसमाज के नेताओं को व्यक्तिगत सम्पर्क कर विचार-विमर्श करना चाहिये और साथ ही अपने से समानता रखनेवाली शक्तियों से भी। पहले में द्रमुक तथा दूसरे में शिवसेना के नाम गिने जा सकते हैं। डॉ० लोहिया की रामास्वामी नायकर से भेंट बहुत उपयोगी सिद्ध हुई थी पर कुछ विरोधियों ने उसे विफल बना दिया।

आर्यसमाज की लाबी

आर्य पत्रकारों के संघठन द्वारा आर्यसमाज को अपने प्रति होनेवाले विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न प्रकार के अन्याय, अत्याचार एवं भेदभाव की बात को अंग्रेजी एवं हिन्दी के दैनिक पत्रों के 'सम्पादक के नाम पत्र' कालम के माध्यम से बराबर देश की जनता के सामने लाना चाहिये। आर्यसमाज की लाबी इस विषय

में सर्वथा मृत है। आर्यसमाज को अब तक उपेक्षित भारत के सीमान्त प्रदेशों में बड़े वेग एवं शक्ति से गतिशील होना चाहिये और प्रभावशाली राजनीतिक व्यक्तियों से इसमें भरपूर सहायता लेनी चाहिये।

सर्वांगीण परिचय की बृहत् पुस्तक विविध भाषाओं में

आर्यसमाज स्थापना शताब्दी समारोह से पूर्व २००-३०० पृष्ठ की कोई आर्यसमाज के सर्वांगीण परिचयवाली पुस्तक अंग्रेजी में या विभिन्न दक्षिण भारतीय भाषाओं में छपवाकर बंगाल महाराष्ट्र और चारों दक्षिणी राज्यों के प्रत्येक अध्यापक के पास पहुँचाने की योजना बनानी चाहिए। महामण्डलेश्वरों को २५०-२५० रुपये की पुस्तकें भेंट करने की सार्वदेशिक सभा की योजना की अपेक्षा यह योजना कहीं अधिक व्यावहारिक एवं लाभप्रद योजना है। इससे लाखों लोगों तक आर्यसमाज का सन्देश पहुँचने में सहायता मिलेगी और आर्यसमाज से प्रभावित होनेवाले लोग अध्यापक होने से विद्यार्थियों को भी आर्यसमाज का कुछ-न-कुछ परिचय करवाएँगे। नए क्षेत्र में प्रचार का मुख्य साधन वहाँ के अध्यापकों को ही बनाना चाहिए और वे ही सर्वाधिक लाभप्रद सिद्ध हो सकते हैं। पर वह पुस्तक ऐसी हो कि आर्यसमाज और उसके प्रवर्तक के व्यक्तित्व एवं कार्य को पाठक की आँखों के सामने मूर्तरूप में उपस्थित कर दे। फिर किसी ऐसी ही पुस्तक को विदेशी विद्यार्थियों एवं अध्यापकों तक पहुँचाने का प्रयास किया जाये।

शुद्धि का नया और सक्षम स्वरूप

आर्यसमाज के स्वरूप को सार्वभौम बनाने के लिए उसे उदार बनाया जाये। जो विधर्मी शुद्ध कर आर्यसमाजी बना लिये जाते हैं, : ': बिरादरी से पृथक् हो जाते हैं और हम उन्हें अपने में खपा नहीं पाते। अतः व्यावहारिक बात यह है कि जिस प्रकार एक

सनातनी आर्यसमाज के सिद्धान्तों में विश्वास करने से ही आर्य समाज का सदस्य एवं अधिकारी बन सकता है, उसी प्रकार ईसाई एवं मुसलमान भी आयसमाज में निष्ठा रखने से आर्यसमाज के सदस्य एवं अधिकारी बन सकें और वैसे अपनी बिरादरी और अपने घर में ही रहें। इस सम्बन्ध में बहाइयों की पद्धति पर ध्यान देना चाहिए। एक मुसलमान या हिन्दू बहाई बनने पर केवल बहाई सिद्धान्तों पर आचरण करने लगता है, पर उसका नाम, परिवार आदि नहीं बदलते। अतः इस पद्धति का भी आर्यसमाज को प्रयोग करके देखना चाहिये। स्व० पण्डित गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय नें 'जीवन-चक्र' में इस प्रथा का समर्थन किया है, जो उचित है।

आर्यछात्र परिषद् का गठन

शिक्षण-संस्थाओं में 'आर्यछात्र परिषद्' का अखिल भारतीय स्तर पर गठन किया जाए, जो छात्रों में आर्य सिद्धान्तों के अनुसार छात्रों का मार्गदर्शन करे और उनमें आर्य सिद्धान्तों का प्रचार करे। आर्यसमाज की शिक्षण-संस्थाओं में आर्य अध्यापकों की नियुक्ति में अधिमान दिया जाये। इस सम्बन्ध में डी. ए. वी. कालेजों में होनें वाले अनर्थ की ओर केन्द्रीय प्रबन्धकर्त्री समिति, दिल्ली के अधिकारियों का ध्यान प्रभावीरूप से आकृष्ट किया जाए।

विभिन्न राजनीतिक दलों के साथ 'राजनीतिक शास्त्रार्थ'

आर्यसमाज की मान्य वैदिक राजनीति की उत्कृष्टता दिखलाने के लिए अब आर्यसमाज को पहले के धार्मिक शास्त्रार्थों की तरह अब विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं का 'राजनीतिक शास्त्रार्थों, के लिए आह्वान करना चाहिए। आर्यसमाजों के उत्सवों एवं सम्मेलनों पर 'राष्ट्रनिर्माण सम्मेलन' आयोजित करके उनमें सब राजनीतिक दलों के नेताओं के भाषण करवाने चाहिएँ और किसी अपने योग्य उपदेशक द्वारा आर्यसमाज का दृष्टिकोण भी प्रस्तुत

करवाना चाहिये। इस सम्मेलन के कार्यक्रम का विज्ञापन खूब होना चाहिए। वर्तमान क़ानूनों की धर्माधर्मसम्मतता की छानबीन के लिए कुछ विशिष्ट संस्कृत-राजनीति शास्त्रवेत्ताओं तथा आधुनिक विधिशास्त्रियों की समिति बनाई जानी चाहिए, जो अनुचित धर्म विरुद्ध बनाए गए नियमों की ओर जनता तथा क़ानून निर्माता समस्त सांसदों का ध्यान आकृष्ट करे।

नाम के सम्बन्ध में आर्यसमाज का प्रयोग आवश्यक

आर्यसमाज में दीक्षित व्यक्तियों के वंश में आर्यसमाज से उसके सम्बन्ध की स्मृति तथा आर्यत्व-भावना को चिरस्थायी बनाने, जाति-भेद की भावना का उन्मूलन करने तथा शुद्ध हुए लोगों को दूध में पानी की तरह खपाने के लिए अपने नाम के साथ 'आर्य' शब्द को लगाने का प्रबल अभियान आरम्भ किया जाये।

आर्य सेवानिधि

जो लोग आर्यसमाज के लिए प्राणपण से कार्य करते रहे हैं, असहायावस्था में उनके निवास, भोजन एवं चिकित्सा की व्यवस्था के लिए एक 'आर्य सेवा निधि' की स्थापना की जानी चाहिये। उनकी मृत्यु पर उनके निराश्रित परिवारों की सहायता भी इससे होनी चाहिए।

आर्य प्रतिभाएँ आर्य प्रदर्शनी और दयानन्द दर्शन ट्रेन

आर्यसमाज से सम्बन्धित जिन भी व्यक्तियों ने देश-विदेश में किसी भी क्षेत्र-शिक्षा, चिकित्सा, क्रीड़ा, राजनीति, क़ानून, समाज सेवा आदि—में अपनी विशिष्टता का प्रदर्शन कर नाम व महत्त्वपूर्ण पद पाया है, उन सबका परिचय देनेवाली 'आर्यप्रतिभाएँ' पुस्तक सचित्र प्रकाशित की जानी चाहिए और उनके चित्रों की प्रदर्शनी भी दिखाई जानी चाहिए। ऐसी ही एक सिक्खों की उत्तम प्रदर्शनी मैंने गतवर्ष 'अखिल भारतीय सिख शिक्षा सम्मेलन' के अवसर पर बम्बई

में देखी थी। उसी तरह आर्यसाहित्य की प्रदर्शनी भी समय-समय पर प्रदर्शित होनी चाहिये। गांधी-दर्शन-ट्रेन की तरह एक दयानन्द-(आर्यसमाज) दर्शन-ट्रेन को भी यदि सारे देश में घुमाने की व्यवस्था हो जाये, तो वहुत उत्तम रहे।

आर्य युवक केन्द्र

पर्यटन-योग्य स्थानों पर 'आर्य युवक केन्द्र', 'आर्य युवक निवास' आदि भी खोले जायें और उनका सम्बन्ध विशेष नियमों से अधीन 'अन्तर्राष्ट्रिय युवक निवास' संगठन के साथ जुड़ जाए, ताकि विदेशी युवकों को भी उनमें ठहरने से कुछ आर्यसमाज का परिचय मिले। इनमें नियमों के बन्धन कुछ ढीले एवं उदार हों।

आर्य समाज मन्दिर एक सदृश एकरूप

आर्यसमाज मन्दिरों के रूप-रंग में एकरूपता होनी चाहिए और उसका आकार-प्रकार, साज-सज्जा, वातावरण ऐसा हो, जो आनेवालों के मन को भाये और मन में शान्ति का संचार करे। ऐसी एकरूपता का सार्वदेशिक सभा को कोई स्थायी मानचित्र निश्चित करना चाहिये।

आर्य युवक शिविर

आर्यसमाजों में नवयुवकों को विशेष महत्त्वपूर्ण कार्य एवं पद सौंपे जाएँ। उत्सवों एवं सम्मेलनों में 'आर्य युवक सम्मेलन' हों, जिनमें युवक बोलें एवं भाग लें। आर्यसमाज मन्दिरों में युवकों की रुचि की गतिविधियाँ एवं कार्यक्रम भी संचालित किये जाएँ। अखाड़े, व्यायामशालाएँ आदि भी हों। समय-समय पर उनके शिविर भी लगें। उपदेशकों के शिविरों की तरह प्रतिवर्ष कुछ दिन के शिविर आर्यसमाजों के प्रधानमन्त्री आदि अधिकारियों के भी अनिवार्य रूप से लगने चाहिएँ। जो उन शिविरों में रहकर प्रमाण पत्र न ले सके, उन्हें वैधानिक रूप से अपने पद से च्युत का दिया जावे।

विभिन्न प्रदेश में और विदेश में विचार-विनिमय व्यवस्था

सार्वदेशिक सभा को कभी-कभी विभिन्न प्रदेशों के, विशेषकर दक्षिण के एवं बंगाल के संसत्सदस्यों को विचार-विनियम के लिए जल-पान का निमन्त्रण देना चाहिये और आर्यसमाज के दृष्टिकोण पर खुलकर विचार-विमर्श करना चाहिए। उधर दक्षिण में आर्य-सांसदो के शिष्ट मण्डल भी भेजने चाहिएँ जो वहाँ के विधायकों एवं प्रमुख नागरिकों से वार्ता और जनता में सार्वजनिक भाषण करें। इसी प्रकार विश्व के प्रसिद्ध लेखकों को आर्यसमाज का साहित्य भेजा और उनसे सम्पर्क किया जाना चाहिये। सभा को लोगो से भेंट एवं पत्र-व्यवहार करने के लिए एक अंग्रेजी के अच्छे वैदिक विद्वान की सम्पर्क अधिकारी, के रूप में नियुक्ति करनी चाहिए जो निरन्तर विशिष्ट देशी-विदेशी लोगों को आर्यसमाज का परिचय देता रहे।

. आर्य समाज के उच्च पदस्थ विशिष्ट व्यक्तियों से सभा को देश-विदेश के अंग्रेज़ी दैनिकों में ऋषि दयानन्द के सम्बन्ध में लेख लिखवाने चाहिएँ जैसे श्री सूरजभान, श्री गोवर्द्धनलाल दत्त आदि विश्वविद्यालयों के कुलपतियों से तथा श्री डी. के. महाजन जैसे मुख्य न्यायाधीशों से। उनके लेख स्वीकृत भी अवश्य होंगे और प्रभावशाली भी।

केन्द्रीय दयानन्द विश्वविद्यालय की स्थापना

आर्यसमाज की समस्त शिक्षण-संस्थाओं को एक केन्द्रीय दयानन्द विश्वविद्यालय के अन्तर्गत लाने की प्रबल चेष्टा की जानी चाहिएँ ताकि महर्षि के शिक्षा-आदर्शों को मूर्तरूप दिया जा सके। इसकी स्थिति सरकार के केन्द्रीय विश्वविद्यालय जैसी हो। कोई क़ानूनी अड़चन यदि इसके मार्ग में बाधक हो तो उसे दूर करने के प्रयास होने चाहिएँ। वैसे अब हरियाणा में रोहतक में, दयानन्द विश्वविद्यालय खोलने के लिए शिक्षा-मन्त्री चौ. माड़ूसिंह जी तथा प्रो. शेरसिंह जी से हमारी कुछ चर्चा शुरू हुई थी। अब विचार है कि आर्य-

बुद्धिजीवी परिषद् की ओर से कुछ शिष्ट-मण्डल इस माँग को लेकर हरियाणा के मुख्य मन्त्री एवं शिक्षा-मन्त्री के पास भेजे जाएँ। पंजाब विश्वविद्यालय में दयानन्दपीठ की स्थापना का प्रस्ताव पंजाब सरकार स्वीकार कर चुकी है और चौ० माङूसिंह जी कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में दयानन्द पीठ की हमारी माँग को स्वीकार कर वहाँ इसकी स्थापना की घोषणा ३ अगस्त को संस्कृत दिवस समारोह में कर चुके हैं। अभी हमारे प्रयास जारी हैं।

वैज्ञानिक अध्ययन केन्द्र ढोंगी गुरुओं से रक्षा के लिए

देश में एक आध्यात्मिक एवं योग-शिक्षण की विशाल संस्था सार्वदेशिक सभा को खोलकर नक़ली योगियों के धोके से जनता को बचाना चाहिये और अध्यात्म, मनोविज्ञान, परामनोविज्ञान, स्वप्न-विज्ञान, तथा यज्ञ-विज्ञान आदि का वैदिक मान्यताओं के परिप्रेक्ष्य में वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करना चाहिए।

वेदाध्ययन केन्द्र और आर्य ग्रन्थ प्रकाशन

एक ऐसे वेदाध्ययन केन्द्र की स्थापना होनी चाहिए जहाँ समग्र नये-पुराने वैदिक साहित्य का संग्रह एवं अनुसन्धान-प्रगति का लेखा-जोखा रहना चाहिये। अब तक हमने जो वेदों की उपेक्षा की है, उसका परिमार्जन अब इसी प्रकार हो सकता है कि चारों वेदों के महत्त्वपूर्ण आवश्यक टिप्पणियों के साथ हिन्दी तथा अंग्रेज़ी में तो एकदम सम्पूर्ण प्रामाणिक भाष्य प्रकाशित किये जाएँ। विभिन्न विश्वविद्यालयों में वेदों के जो-जो सूक्त पाठ्यक्रमों में निर्धारित तथा महत्त्वपूर्ण हैं, उन सब सूक्तों के सुन्दर प्रामाणिक एवं तुलनात्मक अर्थों सहित 'सूक्त संग्रह' प्रकाशित किये जाने चाहिएँ। ऋषि के वेदभाष्य पर टीका होनी चहिए। आर्य समाज द्वारा सम्पादित मूल वैदिक संहिताओं में अगणित अशुद्धियाँ पाई जाती हैं। वस्तुतः आर्य दृष्टिकोणवाली विस्तृत भूमिका के साथ प्राचीन आर्य ग्रन्थों के सर्वाङ्ग-सुन्दर शुद्ध संस्करणों की व्यवस्था करना आर्यसमाज का

प्रथम कर्त्तव्य है। ऐसे संस्करणों के माध्यम से ही इन ग्रन्थों के सम्बन्ध में आर्यसमाज का दृष्टिकोण विश्व के सब विद्वानों के समक्ष जिस सरलता से पहुँच सकता है, वैसे अन्य किसी विधि से नहीं। आर्यसमाज के दृष्टिकोण से सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय तथा वैदिक युग का प्रामाणिक इतिहास भी प्रकाशित किया जाना चाहिए।

मारिशस की भाँति अन्य देशों में भी आर्य सम्मेलन होने चाहिएँ और उनकी परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में आर्य समाज के वहाँ प्रचार की समस्याओं को समझा जाना चाहिए।

देश-विदेश में वैदिक अर्थ-नीति एवं राजनीति का वैशिष्ट्य भलीभाँति प्रतिपादित किया जाना चाहिये, कि सामाजिक विषमता कैसे दूर हो सकती है।

इन विविध उपायों के अपनाने से ही आर्यसमाज वस्तुतः एक सार्वभौम प्रगतिशील संस्था बन सकता है, और तभी वह बनसकेगा 'महर्षि दयानन्द के स्वप्नों' का आर्यसमाज।

डॉ० भवानीलाल भारतीय

एम० ए० पी० एच० डी०

शताब्दियों की राजनीतिक पराधीनता ने भारतीय समाज को विकार-ग्रस्त बना दिया था। राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक उत्पीडन तथा आत्मबोध के अभाव ने भारतवासियों में जिस हीन भावना को जागृत किया उसका सहज ही उन्मूलन होना कठिन था। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक पहुँचते-पहुँचते स्थिति और भी भायवह बन गई। मुगल साम्राज्य के छिन्न-भिन्न हो जाने के पश्चात् उत्पन्न राजनीतिक अस्थिरता ने देश के नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों को विघटित कर दिया। अराजकता, असुरक्षा तथा अस्थायित्व के भाव भारतीय जन समाज में पनपने लगे और ऐसा प्रतीत होता था कि यदि शीघ्र ही शासन की स्थिरता, सामाजिक सुरक्षा तथा वैयक्तिक और समष्टिगत अधिकारों को रक्षा का आश्वासन नहीं मिला तो देश का भविष्य अंधकारपूर्ण हो जाएगा।

विदेशी शासन से उत्पन्न पराधीनता के भावों ने हिन्दू समाज को विकार-ग्रस्त ही नहीं बनाया, हिन्दुओं के धार्मिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक मानदण्डों की भी अपूरणीय क्षति की। सहस्राब्दियों पूर्व के वैदिक, औपनिषदिक तथा रामायण-महाभारतकालीन समाज में लोगों की इहलोक और परलोक के प्रति जो स्वस्थ दृष्टि थी वह तो अतीत की वस्तु हो ही गई, मौर्य और गुप्त-युगीन भौतिक समृद्धि तथा वैभव, कलात्मक अभिरुचि, साहित्य, संगीत, काव्य और स्थापत्य के क्षेत्र में महती उपलब्धियाँ और बृहत्तर भारत के समुद्रपारीय देशों पर भारत की सांस्कृतिक विजय के तथ्य भी अब केवल इतिहास में लिखने योग्य ही रह गए। धर्म, समाज और सामान्य जनजीवन के क्षेत्र में पराधीनता की काली घटाओं

ने जिन आपत्ति, विपत्ति और अभिशापों की उपल वृष्टि की, उससे जनता के दुःख और कष्ट ही बढे। धर्म के नाम पर थोथा कर्म-काण्ड, नैतिकता के नाम पर मिथ्या और मूढ विश्वासों का प्रचलन तथा सुसंगत सामाजिक विधान के स्थान पर कठोर वर्जनाएँ और नियन्त्रण इस युग की कतिपय विकृतियाँ थीं। लोगों का चिन्तन इतना विकार ग्रस्त एवं दूषित हो गया था कि वैचारिक उदारता के स्थान पर कट्टर संकीर्णता तथा अनुदारता के भावों का ही प्रसार हुआ। फलतः समाज में बाल-विवाह का प्रचलन विधवाओं पर अत्याचार, बहु विवाह को स्वीकृति, स्त्रियों का शिक्षा पर प्रतिबन्ध तथा उन्हें पर्दे के पीछे रखे जाने की प्रथा, जन्म के आधार पर स्पृश्यास्पृश्य की भावना तथा कन्यावध, सती-दाह आदि नारी वर्ग के प्रति असीम अत्याचारों का विधान स्वीकृत हुआ। इन सामाजिक कुरीतियों ने हिन्दू-समाज को एकता को विशृंखल कर दिया जिसका एक अवश्यंभावी परिणाम सहस्रों जातियों और उपजातियों की संकीर्ण काराओं में बँधकर समाज का छिन्न-भिन्न और अस्त-व्यस्त हो जाना।

इसी समय भारतवासियों का पश्चिम से सम्पर्क हुआ। यूरोपीय राष्ट्रों ने धीरे-धीरे भारत में अपना राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित किया। पुर्तगाली, फ्रान्सीसी और अंग्रेज़ी उपनिवेशों को स्थापना इस देश में हुई। राष्ट्रों की इस होड़ में अंग्रेज़ जाति ही सर्वाधिक शक्तिशाली प्रमाणित हुई और अंग्रेज़ों को ही भारत में साम्राज्य स्थापित करने का अवसर मिला। अंग्रेज़ी शिक्षा, शासन तथा सभ्यता से प्रभावित होनेवाला भारत का सर्वप्रथम प्रान्त बंगाल था। अठारहवीं शताब्दी का वह धूमिल संध्याकाल था। नवयुग के आगमन की ज्योति वेला सन्निकट थी।

विदेशी संस्कृति से भारत का सम्पर्क और उसका दूषित प्रभाव

अंग्रेज़ी साम्राज्य की स्थापना के साथ-साथ पाश्चात्य सभ्यता

की भी आँधी आई और उसने भारतीय जनमानस को बुरी तरह झकझोर दिया। भारतवासी राजनैतिक दृष्टि से तो दास बने ही उनकी नैतिक, सामाजिक और आर्थिक दशा भी शोचनीय हो गई। देश एक अभूतपूर्व सांस्कृतिक संकट से गुज़र रहा था। पश्चिम के इस सम्पर्क का भारतवासियों पर द्विविध प्रभाव पड़ा। इस प्रभाव को श्रेयस्कर तथा स्पृहणीय इस अर्थ में कहा जा सकता है कि इससे भारतवासियों में स्वतंत्रता, समानता तथा बंधुत्व के भावों का उदय हुआ। इस समय तक यूरोप में राष्ट्रवाद का जन्म हो चुका था। धार्मिक संकीर्णता के भाव समाप्त हो रहे थे। फ्रान्स की राज्य क्रान्ति तथा अमेरिका के स्वातंत्र्य-युद्ध नें लोगों में प्रजातंत्र के भाव उत्पन्न किये और व्यक्तिगत स्वाधीनता का उद्-घोष हुआ। उधर इंग्लैण्ड तथा यूरोप के अन्य देशों में औद्योगिक क्रान्ति हुई जिसने समाज के ढाँचे में प्रभावी परिवर्तन किये। लोगों के सोचने की दृष्टि बदली तथा युग के दार्शनिक विचारक और चिंतक यह अनुभव करने लगे कि मध्यकालीन संकीर्णता और कट्टरता का युग समाप्त हो गया है तथा विज्ञान एवं बुद्धिवाद पर आश्रित नवीन युग-बोध का उदय हो रहा है।

यूरोपीय राष्ट्रों के सम्पर्क, विज्ञान के रेल, तार, डाक आदि नूतन आविष्कारों के प्रसार तथा पश्चिमी शिक्षा नें हमारे अंधविश्वासों और रूढ़िगत कदाचारों पर निर्मम प्रहार किया और हमें उदार तथा व्यापक दृष्टि अपनाने के लिए विवश किया। भारत-वासियों में राष्ट्रीय भावों का उदय हुआ, उन्होंनें समष्टिगत दृष्टि से सोचने का प्रयत्न किया। फलतः वैयक्तिक वैचारिक स्वतंत्रता के लिये संघर्ष करने की प्रेरणा भी उन्हें मिली। इस सबका यह परिणाम निकला कि शताब्दियों से प्रचलित गतानुगतिकता, रूढ़िवाद एवं कुरीतियों के बंधनों से मुक्त होने के लिए उनका मन व्याकुल हो उठा।

यह सब कुछ होनें पर भी यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि इस विदेशी सम्पर्क का हम पर सर्वथा अनुकूल प्रभाव ही नहीं पड़ा, अपितु हममें अन्धानुकरण, परमुखापेक्षिता तथा स्वाभिमान-शून्यता के भाव बढ़नें लगे। यद्यपि समाज में एक ऐसा वर्ग भी था जो अंध-विश्वास, परम्परा पालन तथा वैचारिक जड़ता से चिपके रहनें में ही अपना हित समझता था जबकि पश्चिमी सम्पर्क से प्रभावित नवयुवक वर्ग ने प्रत्येक स्वदेशी वस्तु को हेय मानकर प्रत्येक बात में अपनी अनुकरण वृत्ति को मुख्यता देते हुए विदेशी वर्ग की ओर सतृष्ण नेत्रों से देखनें में ही अपनी सार्थकता मान रखी थी।

पश्चिमी शिक्षा का प्रभाव

पश्चिमी शिक्षा तथा इसाई धर्म प्रचारकों के प्रचार-कार्य नें हमारे राष्ट्रीय स्वाभिमान को और भी कुचल डाला। विजयी राष्ट्रों की यह सदा की प्रवृति रही है कि पराजित राष्ट्र को न केवल राजनीतिक दृष्टि से ही पंगु बनाया जाये, अपितु भाषा, भाव और आचार-विचार का दासत्व भी उनपर थोप दिया जाये। इसके लिए सर्वप्रथम वे पराजित राष्ट्र पर अपनी शिक्षा-प्रणाली थोपते हैं। इसका सुनियोजित परिणाम थोड़े समय के भीतर ही प्रकट होनें लगता है। अंग्रेजों नें भी भारत में यही किया। उन्होंनें भारत को राजनीतिक दृष्टि से तो दास बनाया ही, उनकी यह भी चेष्टा रही कि शिक्षा, सभ्यता, धर्म और विचारों की दृष्टि से भी भारतवासी अपने शासकों का मुँह जोहनेवाले बन जायें। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए उन्होनें अंग्रेजी ढंग के स्कूल और कालेज स्थापित किये तथा उनमें पश्चिमी शिक्षा प्रणाली का प्रारम्भ कर भारत-वासियों को हीन-सत्व, स्वाभिमान-शून्य तथा पाश्चात्य जीवन-प्रणाली का अनुगामी बनाया। लार्ड मैकॉले द्वारा निर्धारित इस शिक्षा योजना नें भारतीयों के स्वात्मबोध को सर्वथा नष्ट कर दिया। जिस शिक्षा का उद्देश्य ही एक ऐसा वर्ग उत्पन्न करना था जो आचार-

विचार, बुद्धि और मन से अंग्रेज़ होने का दम भरे, उससे अधिक आशा रखना ही व्यर्थ था। मैकॉले के उस प्रसिद्ध पत्र की बहुउद्धृत पंक्तियों का उपयुक्त भाव यह स्पष्ट सूचित करता है कि इस शिक्षा-नीति के कार्यान्वियन में उसका मूल उद्देश्य क्या था।

लार्ड मैकॉले को अपनी शिक्षा-विषयक-नीति की सफलता में पूर्ण विश्वास था। तभी तो अपने पिता को १८३६ ई० में लिखे गए एक पत्र में उसने यह विश्वास व्यक्त किया कि :

> "जो भी हिन्दू अंग्रेज़ी शिक्षा ग्रहण कर लेता है वह अपने धर्म के प्रति सच्ची श्रद्धा और विश्वास खो बैठता है। कुछ केवल दिखावे के रूप में उसे मानते हैं, कतिपय अन्य ईसाई हो जाते हैं। यह मेरा सुनिश्चित विश्वास है कि यदि शिक्षा की हमारी यह योजना पूरी तरह काम में लाई गई तो अब से तीस वर्ष पश्चात् बंगाल के कुलीन वर्ग में कोई मूर्तिपूजक (हिन्दू) नहीं रहेगा।"

इस प्रकार सरकारी शिक्षण संस्थाओं में जहाँ अंग्रेजी शिक्षा के कीटाणु भारतवासियों के जात्यभिमान और अस्मिता को नष्ट कर रहे थे वहाँ विदेशी शासकों की सहानुभूति और संरक्षण पाकर ईसाई-धर्म प्रचारक भी धर्म-प्रचार की ओट में उन्हें अधिकाधिक पश्चिमाभिमुख बनाने का प्रयास कर रहे थे। इन तथाकथित धर्म प्रचारकों ने जनमानस को हीनभाव से ग्रस्त तथा दुर्बल ही बनाया।

पुनर्जागरण के आन्दोलनों के प्रादुर्भाव

ऐसी परिस्थिति में देश में धार्मिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण के आन्दोलनों का उदय होना स्वाभाविक ही था। नवोदय के आन्दोलनों का उद्देश्य था भारतीय समाज में व्याप्त रूढ़िवादिता की व्याधि को समाप्त कर भारत की युवक-शक्ति को पाश्चात्य सभ्यता के विनाशकारी प्रभाव से बचाते हुए देश की अस्मिता को

सुरक्षित रखना। इन आन्दोलनों द्वारा समाज में प्रचलित बाल, अन-मेल और वृद्ध-विवाह विधवा विवाह, निषेध, पर्दा प्रथा, समुद्र यात्रा अस्वीकार आदि सामाजिक रूढ़ियों और कदाचारों को उन्मूलित करने की चेष्टा की गई। समाज के क्षेत्र में ही नहीं, धर्म के क्षेत्र में भी मूल्यों का पुनर्विवेचन किया गया। उसे युग के अनुसार ढालने का प्रयास तो हुआ ही, साथ ही इस बात पर भी विचार किया गया कि क्या बाह्याचारों, रूढ़ियों और स्थूल कर्मकाण्डों को ही धर्म की संज्ञा दी जा सकती है अथवा धर्म के उदात्त एवं महनीय तत्व और ही हैं जो सत्य, अहिंसा, क्षमा, करुणा, सर्वभूत-हित जैसे दिव्य गुणों में विद्यमान रहते हैं।

भारतीय समाज को रूढ़िमुक्त बनाने का एक उपाय यह भी था कि देशवासियों का ध्यान भारत के उस सुदूर अतीत की ओर खींचा जाए जो अत्यन्त प्रौज्ज्वल, सत्त्वप्रधान तथा वर्चस्वपूर्ण था। नवोदयवादियों ने यही किया। लगभग सभी नवोत्थानवादी नेताओं ने अतीत की स्वर्णिम पृष्ठभूमि पर ही नवनिर्माण की बात कही। भारतीय नवजागरण के पितामह राजा राममोहनराय ने उपनिषदों में व्याख्यात अध्यात्म तत्व को अपने मनन और चिन्तन का आधार बनाया। पुनर्जागरण के सर्वाधिक शक्तिशाली ज्योतिर्धर महर्षि दयानन्द ने भी वेदों की ओर लौटने की बात कही। वेदों की सुदृढ आधारभूमि पर ही उन्होंने हिन्दू-समाज को संगठित करने का प्रयास किया। उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना कर भारतीय पुनर्जागरण को एक निश्चित दिशा प्रदान की।

२. आर्यसमाज के सिद्धान्त, कार्य और उपलब्धियां

विक्रम की बीसवीं शताब्दी में विज्ञान और बुद्धिवाद के आधार पर पुरातन आर्य धर्म और भारतीय संस्कृति की मान्यताओं का पुनर्मूल्यांकन करने के लिये जिन सुधार आन्दोलनों का

भारत में जन्म हुआ, उनमें आर्यसमाज अन्यतम था। महर्षि दयानन्द ने अपने भक्तों और मित्रों के आग्रह पर चैत्र शुक्ला प्रतिपदा सं० १९३२ वि० के दिन गिरगांव बम्बई में पारसी डॉ० माणेकजी के उद्यान में आर्यसमाज की स्थापना की। समाज के सिद्धान्तों और विधान को २८ नियमों में निबद्ध किया गया। प्रारम्भ में ही महादेव गोविन्द रानाडे, गोपालराव हरिदेशमुख, सेवकलाल कृष्णदास, गिरधरलाल दयालदास कोठारी आदि कई प्रतिष्ठित पुरुष आर्यसमाज के सभासद बने। बम्बई के अनन्तर १८७७ ई० में लाहौर आर्यसमाज की स्थापना हुई। यहाँ रा० ब० मूलराज तथा लाला साँईदास जैसे कर्मठ सहयोगी आर्यसमाज के संस्थापक को मिले। यहाँ पर ही आर्यसमाज के नियमों और उद्देश्यों को उसके विधान से पृथक् किया गया और संगठन संबंधी संवैधानिक धाराओं को उपनियमों के रूप में पृथक् किया गया। स्वामी दयानन्द के जीवनकाल में ही आर्यसमाज का सार्वत्रिक प्रचार हुआ, देश के सभी भागों में उसकी शतशः शाखाएँ स्थापित हुई और सहस्रों व्यक्ति आर्यसमाज के सभासद् बने।

पुनरुत्थानवादी दृष्टि लेकर चलनेवाला आर्यसमाज अपने समसामयिक (पूर्ववर्ती ब्रह्मसमाज और प्रार्थनासमाज तथा परवर्ती थियोसोफिकल-सोसाइटी तथा रामकृष्ण मिशन) आन्दोलनों की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील एवं यथार्थवादी सिद्ध हुआ। आर्य समाज ने वेदों के आधार पर धर्म के सिद्धान्तों की नवीन व्याख्या की और बताया की धर्म का अभिप्राय केवल रूढ़िगत विचारों का अनुसरण करते हुए कर्मकाण्डों के पालन में ही नहीं है, अपितु धर्म उन उदात्त गुणों की समष्टि का नाम है जो मनुष्य के नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान में सहायक होते हैं। आर्यसमाज की यह भी मान्यता रही है कि भारत के मूल निवासी आर्यों ने अपने ग्रन्थों में धर्म और नैतिकता के जिन सिद्धान्तों को सूत्रित किया था वे सर्व

काल और सर्वदेशों में उपयोगी हैं। अतः आर्यसमाज वेदों और उपनिषदों तथा अन्य ऋषि प्रोक्तग्रन्थों म प्रतिपादित उस नैतिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा का धर्म के नाम पर प्रचार करना चाहतो है जिसमें विश्व बन्धुत्व तथा मानवप्रेम के सूत्र गुंफित है।

आर्यसमाज ने अपने सिद्धान्तों को देश और काल सापेक्ष नहीं बनाया। उसके छठे नियम के अनुसार संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य बताया गया है और मनुष्य की शारीरिक मानसिक, सामाजिक एवं आत्मिक उन्नति को सर्वोपरि लक्ष्य ठहराया गया है। मानव ही नहीं, अपितु प्राणिमात्र के हित को अपना ध्येय मानते हुए भी आर्यसमाज की शिक्षाओं का राष्ट्रहित से कोई विरोध नहीं है। अपितु पुनर्जागरण के अध्येता विद्वानों का यही निश्चित मत है कि आर्यसमाज के द्वारा देश का जो व्यापक हित साधन हुआ है उसे ही उसकी लोकप्रियता तथा सफलता का मूल कारण समझा जाना चाहिए। ब्रह्मसमाज आदि संस्थाएँ जहाँ एक स्पष्ट राष्ट्रीय नीति के अभाव में कालकवलित हो गई वहाँ आर्यसमाज ने धर्माचरण तथा राष्ट्रसेवा को सदा अभिन्न समझा। देश के राष्ट्रीय जागरण और स्वाधीनता प्राप्ति के पुनीत कार्य में आर्यसमाज के अनुयायियों का उल्लेखनीय योगदान रहा है।

(अ) आर्यसमाज और समाज सुधार

इतिहास के अध्येताओं ने आर्यसमाज का उल्लेख समाज सुधार के क्षेत्र में कार्य करनेवाली प्रमुख संस्था के रूप में किया है। आर्यसमाज के सुधार आन्दोलन ने उत्तर भारत के जनजीवन को किस प्रकार और कहाँ तक प्रभावित किया है, इसका यथार्थ मूल्यांकन अभी होना शेष है। विवाह प्रथा में समुचित सुधार, वर्णाश्रम व्यवस्था की वैज्ञानिक व्याख्या, अस्पृश्यता-निवारण, नारी शिक्षा आदि कुछ ऐसे क्षेत्र हैं, जिनमें आर्यसमाज का कर्तृत्व अपने वस्तु निष्ठ रूप में अभिव्यक्त हुआ है। विशेषतः हिन्दूसमाज में व्याप्त

अस्पृश्यता के अभिशाप को दूर करने तथा दलित एवं पिछड़ी जातियों को उच्च वर्ग के लोगों के समान स्तर पर लाने के लिए आर्यसमाज के प्रयास सर्वथा श्लाघनीय रहे हैं। स्वयं महात्मा गांधी ने ऋषि दयानन्द की अर्द्धनिर्वाण शताब्दी के अवसर पर यरवदा कारागार से प्रेषित अपने सन्देश में कहा था—"ऋषि दयानन्द ने हमारे लिये जो मूल्यवान विरासतें छोड़ी हैं उनमें अस्पृश्यता के विरुद्ध उनका उद्घोष सर्वप्रमुख है।"

यद्यपि यह कहना कठिन है कि समाजसुधार का कार्य पूर्णतया समाप्त हो गया, तथापि यह निश्चित है कि जन सामान्य में समाज सुधार के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करना तथा लोगों के दृष्टिकोण में उदारता एवं प्रगतिशीलता संचरित करना आर्यसमाज की एक उल्लेखनीय उपलब्धि रही। आज भी सामाजिक वैशम्य समाप्त नहीं हुआ है, जातपात के दलदल से निकलकर हिन्दूसमाज अपने आपको सुसंगठित इकाई के रूप में प्रस्तुत नहीं कर सका है। फिर भी आर्यसमाज ने जो कुछ किया, उसका महत्त्व सुस्थिर है। महर्षि दयानन्द ने जिस अज्ञान, अन्याय और अभावों से रहित, अंधविश्वास एवं मूढ आचार-विचारों से सर्वथा मुक्तसमाज की कल्पना की थी उसे चरितार्थ करने के लिए आर्यसमाज को एक बार पुनः तत्परता के साथ सुधार और संस्कार का कार्य अपने हाथ में लेना होगा। आज परिस्थितियाँ परिवर्तित हो चुकी हैं। आज से पचास वर्ष पूर्व अछूतोद्धार तथा नारी शिक्षा के लिए जहाँ आर्य समाज को शास्त्रार्थ, उपदेश और बहस-मुबाहिसे करने पड़ते थे वहाँ आज यह कार्य जन-शिक्षण तथा शासन के नियमों के आधीन हो रहा है। परन्तु यह भी स्वीकार करना पड़ता है कि नये-नये मत, पंथ, आडम्बर तथा अंधविश्वासों का क्षितिज पूर्वापेक्षा अधिक व्यापक ही हुआ है। महर्षि दयानन्द का स्वप्न तभी पूर्ण होगा जब आर्यसमाज वर्तमान युग में व्याप्त नाना साम्प्रदायिक बाह्य आड-

म्बरों एवं मूढ विश्वासों को समाप्त कर सकने में समर्थ हो सकेगा।

(अ) आर्यसमाज और राष्ट्रीयता

आर्यसमाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द ने अन्य धर्माचार्यों से सर्वथा भिन्न अपने राजनतिक एवं राष्ट्रीय विचारों को स्पष्ट रीति से अभिव्यक्त किया। वे मूलतः राष्ट्रवादी थे।

उनकी राष्ट्रीय संवेदना की प्रशंसा करते हुए योगी अरविंद ने एक स्थान पर लिखा है—"He had the national instinct in him and he was able to make it luminous."

अर्थात् दयानन्द में राष्ट्रीय चेतना थी और वे उसे उद्दीप्त कर सके थे। सुप्रसिद्ध फ्रैन्च विद्वान् रोमांरौलां का भी यह दृढ़ विश्वास था कि दयानन्द भारत के पुनर्जागरण का अग्रदूत था और उसने भारत की राष्ट्रीय चेतना को जगाने में अद्भुत कार्य किया। होम रूल लीग की अध्यक्षा श्रीमती ऐनीबेसेन्ट ने तो यहाँ तक लिख दिया था कि ऋषि दयानन्द ने प्रथमतः "भारत भारतवासियों के लिए" (India for Indians) की घोषणा की।

अपने संस्थापक के स्वातंत्र्य प्रेम तथा देशभक्ति के भावों से प्रेरणा लेकर आर्यसमाज ने अपने शैशवकाल से ही भारत के स्वाधीनता संग्राम में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। यद्यपि आर्य-समाज एक विशुद्ध धार्मिक आन्दोलन होने तथा अपनी सार्वभौम और सार्वकालिक संरचना को सुरक्षित रखने के कारण वह किसी देश विशेष की सामयिक राजनीति में प्रत्यक्षतः भाग नहीं लेता तथापि उसके अनुयायियों ने भारत के स्वाधीनता आन्दोलन में सर्वात्मना भाग लेकर अपने आचार्य की भावनाओं का ही आदर किया है। श्यामजी कृष्ण वर्मा, लाला लाजपतराय, सूफी अम्बा

प्रसाद, गेंदालाल दीक्षित, भगतसिंह, रामप्रसाद बिस्मिल आदि क्रान्तिकारी देशभक्त आर्यसमाज से ही प्रेरणा लेकर देश के लिए आत्मत्याग और बलिदान करने में समर्थ हुए थे। आज भी आर्य समाज के साधारण सदस्य देशभक्ति और राष्ट्र-सेवा में किसी से पीछे नहीं हैं। आर्यसमाज शताब्दी समारोह अमृतसर में भाषण देते हुए पंजाब के मुख्यमंत्री ज्ञानी जैलसिंह ने ठीक ही कहा था कि जितने देशभक्त आर्यसमाज ने उत्पन्न किये हैं उतने किसी अन्य संस्था ने नहीं।

(इ) आर्यसमाज और शिक्षा

शिक्षा के क्षेत्र में भी आर्यसमाज का योगदान कम नहीं है। आर्यसमाज के संस्थापक ने अपने ग्रन्थों में शिक्षा विषयक जिस नीति का प्रवर्तन किया था उसे पुष्पित और पल्लवित करने का प्रयत्न कालान्तर में हुआ। डी० ए० वी० कालेज आन्दोलन का सर्वत्र प्रसार इस बात का द्योतक है कि आर्यसमाज ने शिक्षा विषयक पौरस्त्य और पाश्चात्य, शास्त्रीय और वैज्ञानिक दोनों दृष्टिकोणों के समन्वय का प्रयास किया है। महान् शिक्षा शास्त्री स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा गुरुकुल की स्थापना इस तथ्य का सूचक है कि दयानन्द निर्दिष्ट शिक्षा-पद्धति केवल कल्पना मात्र अथवा अव्यावहारिक न होकर सर्वथा वास्तविक एवं व्यवहारोपयोगी है। वस्तुतः रवीन्द्र नाथ ठाकुर की विश्व भारती, वाराणसी की काशी विद्यापीठ तथा असहयोग आन्दोलन के युग में स्थापित अन्य राष्ट्रीय शिक्षण संस्थायें मूलतः गुरुकुलों के आदर्श पर ही स्थापित की गई थीं।

आज भी आर्यसमाज प्रतिवर्ष करोड़ों रुपया स्वसंचालित शिक्षण-संस्थाओं पर व्यय करता है। उसकी पर्याप्त शक्ति और श्रम गुरुकुलों, विद्यालयों तथा कालेजों के संचालन में लगता है, परन्तु इन शिक्षण-संस्थाओं का आनुपातिक लाभ आर्यसमाज को नहीं मिल पाता। अतः आवश्यकता इस बात की है कि एक समन्वित

शिक्षा पद्धति के रूप में आर्यसमाज अपनी शिक्षा-नीति का पुनर्निर्धारण करे। इसमें प्राचीन आश्रम-प्रणाली के अनुरूप छात्रों के वैयक्तिक चारित्रिक गुणों का समुचित विकास जिस प्रकार अभीष्ट है, उसी प्रकार नवीन ज्ञान, विज्ञान और तकनीकी शिक्षण के महत्त्व को भी स्वीकार किया जाना आवश्यक है। आर्यसमाज की शिक्षण-संस्थाओं में विद्यार्थी की मातृभाषा तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी को शिक्षा के माध्यम के रूप में सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई थी। अतः यदि आर्यसमाज अपने संस्थापक के शिक्षा विषयक आदर्शों को वास्तविक रूप में क्रियान्वित करना चाहे तो यह अत्यन्त उपयुक्त होगा कि वह आर्य ज्ञान के भाण्डागार संस्कृत वाङ्मय के अध्ययन के साथ भौतिक विज्ञान (स्वामी दयानन्द के शब्दों में पदार्थ विद्या) की सभी शाखाओं के अध्ययन अध्यापन की एक समन्वित प्रणाली पर बल दे।

हमने अब तक आर्यसमाज के संस्थापन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा देश एवं मानवता के पुनरुत्थान में उसके सार्वत्रिक योगदान का विवेचन किया। अब हम आर्यसमाज के कलेवर में नवीन प्राणों का उन्मेष कराने तथा परिवर्तित परिस्थितियों में उसे अधिकाधिक सशक्त एवं अपने लक्ष्यपूर्ति में तत्परता सहित क्रियाशील होने के कतिपय उपायों पर विचार करेंगे।

३. आर्यसमाज की प्रजातांत्रिक चुनाव प्रणाली और उसमें परिवर्तन की आवश्यकता

संभवतः देश के सांस्कृतिक पुनर्जागरण के युग में आर्यसमाज ही एकमात्र ऐसी संस्था थी जिसने अपने संगठन के लिए प्रजातांत्रिक विधान को स्वीकार किया। यह विधान उस समय कार्यान्वित किया गया था जब लोकतंत्र और प्रजातंत्र की कोई चर्चा ही नहीं थी। आर्यसमाज के लिए यह वस्तुतः एक गौरव की बात

है कि उसने अपने सदस्यों को लोकतांत्रिक अधिकार उस समय प्रदान किये जबकि व्यक्ति के लोक सत्तात्मक अधिकारों की दुहाई देनेवाली राजनैतिक संस्थाओं का जातकर्म भी नहीं हुआ था।

जनतंत्र पर आधारित यह चुनाव-प्रणाली एक युग तक अत्यन्त सफलतापूर्वक आर्यसमाज के लिए उपयोगी सिद्ध होती रही। विदेशी शासन के युग में तो आर्यसमाज के सुदृढ़ प्रजासत्तात्मक संगठन को देखकर एक आलोचक ने उसे "Government within Government" प्रशासन के अन्तर्गत एक अन्य प्रशासन कहा था। परन्तु आज यह अनुभव किया जा रहा है कि जिस चुनाव-प्रणाली को अपनाकर आर्यसमाज ने देश के सार्वजनिक जीवन को मार्ग-दर्शन दिया था, आज वही पद्धति उसके लिए अभिशाप बन गई। धार्मिक संस्था में गुरुपद की स्थापना विभिन्न विकृतियों को जन्म देती है, यह स्वामी दयानन्द का निश्चित विश्वास था। धीरे-धीरे गुरु परम्परा व्यक्ति पूजा को जन्म देती है और सिद्धान्तों के स्थान पर अनधिकारी व्यक्ति ही पूजा और सम्मान के पात्र बन जाते हैं। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि ऋषि दयानन्द मूर्ख और अयोग्य व्यक्तियों को प्रजातंत्र का अधिकार देने के समर्थक थे। मनु आदि स्मृति ग्रन्थों के आधार पर उन्होंने सत्यार्थप्रकाश में यह स्पष्ट कर दिया है कि वेदवित् एक भी संन्यासी जिस धर्म की व्यवस्था करे वही धर्म श्रेष्ठ और माननीय है, इसके विपरीत सहस्रों अज्ञानी मिलकर भी जो कुछ व्यवस्था दें वह माननीय नहीं हो सकती। अतः यथासंभव शीघ्र आर्यसमाज के संविधान के लोकतांत्रिक चरित्र को सुरक्षित रखते हुए भी यह व्यवस्था की जानी आवश्यक है जिनके अनुसार वेदज्ञ विद्वानों, सर्व संग परित्यागी संन्यासियों तथा समाज सेवा के लिए समर्पित व्यक्तियों को आर्यसमाज में वरिष्ठता तथा प्रधानता प्राप्त हो। ऋषि दयानन्द का आर्यसमाज व्यक्ति के अधिकारों को अक्षुण्ण मानता हुआ भी मूर्खों

के बहुमत शासन का समर्थक नहीं है।

प्रचार व्यवस्था में परिवर्तन की आवश्यकता

आर्यसमाज अपने मन्तव्यों तथा सिद्धान्तों के प्रचार हेतु विभिन्न साधनों का प्रयोग करता है। जहाँ लेखनी के द्वारा आर्य समाज के विद्वान् और मनीषी विचारक अपनी विचारधारा का प्रचार करते हैं वहाँ वाणी द्वारा भी सहस्रों लोगों तक अपना संदेश पहुँचाया जाता है। प्रतिवर्ष प्रत्येक आर्यसमाज के वार्षिक अधिवेशन होते हैं, प्रति सप्ताह रविवार को साप्ताहिक सत्संगों का आयोजन किया जाता है, विभिन्न पर्वों, त्यौहारों तथा विशिष्ट कार्यक्रमों पर व्याख्यान, प्रवचन तथा कथा-वार्ताएँ रखी जाती हैं। वार्षिकोत्सवों की प्रथा स्वामीजी के जीवनकाल में ही आरम्भ हो गई थी। स्वयं महर्षि दयानन्द ने मेरठ, लखनऊ तथा लाहौर एवं बम्बई की आर्यसमाजों के वार्षिकोत्सवों में उपस्थित होकर अपने श्रीमुख से श्रोतृ वृन्द के हितार्थ अपनी कल्याणी वाणी प्रवाहित की थी। परन्तु आज यह अनुभव किया जा रहा है कि वार्षिकोत्सव भी नवीन प्रेरणा देने में असमर्थ सिद्ध हो रहे हैं। रूढ़ि और प्रथापालन के रूप में उत्सवों का आयोजन कर हम उनसे वांछित लाभ उठाने में असमर्थ है। यदि उत्सवों की कार्य-प्रणाली में समयोचित सुधार नहीं किया गया तो निश्चित है कि वे सर्वथा निर्जीव तथा शुष्क होकर हमारे लिये भार स्वरूप हो जाएँगे। उत्सवों में प्रसंगानुकूल परिवर्तन नितान्त अपेक्षित है।

कतिपय सुझाव विचारणीय तथा करणीय हो सकते हैं:—

१. उत्सव के पूर्व एक सप्ताहपर्यन्त किसी विद्वान् की आध्यात्मिक अथवा शास्त्रीय विषय पर कथा रखी जाए ताकि उत्सव का उपयुक्त वातावरण बन सके।

२. निश्चित विषयों पर विद्वानों के सुव्यवस्थित, तर्क एवं युक्तिपूर्ण भाषण कराये जाएँ। विषयों की सूचना प्रकाशित विज्ञा-

पत्रों और कार्यक्रमों द्वारा जनता को दी जाये।

३. विभिन्न प्रबुद्ध वर्ग के लोगों को विशेष रूप से आमंत्रित किया जाए तथा व्याख्यानों और कार्यक्रमों के बारे में उनकी प्रतिक्रियाओं को महत्त्व दिया जाए। प्राध्यापक, वकील, छात्र, लेखक, पत्रकार आदि बुद्धिजीवी वर्गों को आकृष्ट करने हेतु विशिष्ट भाषण कराये जाये।

४. राजनैतिक विवादपूर्ण भाषणों को निरुत्साहित किया जाये परन्तु सामयिक समस्याओं के प्रति आर्यसमाज के दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए जन समाज को उचित मार्गदर्शन अवश्य दिया जाना चाहिये।

५. विशुद्ध शास्त्रीय तर्जों के मधुर, भावपूर्ण भजनों के गायक संगीतज्ञ भजनोपदेशकों को प्रोत्साहित किया जाना आवश्यक है।

साप्ताहिक सत्संग को प्राणवान बनाने के कुछ उपाय

वार्षिक उत्सवों को सफल बनाने में तो आर्यसमाज के सदस्यों को पर्याप्त श्रम और शक्ति का नियोजन करना पड़ता है परन्तु साप्ताहिक सत्संग सामूहिक उपासना एक लोकप्रिय प्रणाली है। आर्यसमाज ने इसे अपने प्रारम्भिक काल में ही स्वीकार कर लिया था। साप्ताहिक अधिवेशनों का विधिवत् संचालन करने के लिए सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने एक निश्चित पद्धति का निर्माण किया है। प्रत्येक आर्यसमाज से यह अपेक्षा की जाती है कि वह इस पद्धति का पूर्ण पालन करते हुए साप्ताहिक कार्यक्रम को अधिकाधिक लोकप्रिय रोचक तथा उपदेय बनाता रहे। साधारणतः रविवासरीय सत्संगों में सामूहिक संध्या, यज्ञ, भजन, किसी आर्ष ग्रन्थ की कथा तथा प्रवचनों का कार्यक्रम रहता है। होता यह है कि संध्या और अग्निहोत्र के कार्यक्रमों में सभासदों की उपस्थिति नगण्य रहती है। इसी प्रकार सत्संगों में गाये जाने वाले भजनो की गुणवत्ता, उनके भाव सौन्दर्य तथा गायन कौशल की ओर बहुत कम

ध्यान दिया जाता है। इसी प्रकार निश्चित एवं उपयोगी विषयों पर प्रवचन कराने की अपेक्षा प्रवचन के लिये विषय चयन का दायित्व वक्ता पर ही छोड़ दिया जाता हैं।

साप्ताहिक सत्संगों को प्राणवान्, प्रेरणाप्रद तथा जीवन्त बनाने के लिये निम्न कदम उठाये जाने आवश्यक है।

संध्या और यज्ञ एक सुयोग्य, सुपठित यथा शास्त्रज्ञ पुरोहित के मार्गदर्शन में सम्पन्न होने चाहिये।

ईश्वर-भक्ति के सरस, भावपूर्ण तथा उद्‌बोधक भजनो का सामूहिक गायन जिस भक्तिभूत वातावरण का सृजन करते हैं उसे देखते हुये आर्यसमाज के रस-सिद्ध कवियों यथा अमीचन्द मेहता, नाथूराम शर्मा 'शंकर' नारायण प्रसाद 'बेताब' वासुदेव, पं० प्रकाश चन्द्र कविरत्न आदि के से काव्य रसपूर्ण भजनों का गायन अपेक्षित है।

सत्संगों में कराये जाने वाले प्रवचनों का आधार वेद मंत्र ही होने उचित हैं। उपदेशों में विषयान्तर, अनावश्यक दृष्टान्त देना तथा राजनैतिक आन्दोलनों की चर्चा एवं आलोचना उनके महत्व को न्यून कर देती है। आर्यसमाज की वेदी की मर्यादा; पवित्रता तथा उसके अनुशासन की रक्षा होनी आवश्यक है।

समाज मंदिरों की पवित्रता तथा भव्यता सुरक्षित रहनी चाहिये। यह तभी संभव है जब हम अनुभव करें कि आर्यसमाज मूलतः एक धार्मिक संस्था है तथा उसका मंदिर एक उपासना स्थल की ही भाँति अपनी पावनता की ज्योति को विकीर्ण करता है।

यद्यपि आर्यसमाज मंदिर में किसी प्रकार की देवमूर्ति, प्रतिमा, प्रतिकृति तथा ईश्वर के काल्पनिक प्रतीक की पूजा या अर्चना के लिये कोई स्थान नहीं है तथापि अपनी पावनता, शुद्धता तथा सात्विकता के लिए उसे किसी भी अन्य देवमंदिर, गुरुद्वारे, गिरजे या मसजिद की ही भाँति समझना चाहिए। यह लिखने में हमें कोई विप्रतिपत्ति

नहीं है कि आज समाज मंदिर सर्वथा उपेक्षा, अवहेलना तथा अवज्ञा के पात्र बने हुए हैं। मंदिरों की शुचिता तथा उनके मर्यादा-रक्षण की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया जाता। अनेक समाज मंदिर तो ऐसे भी हैं जिनके तालों को खुले महीने और वर्ष व्यतीत हो जाते हैं। कई समाज मंदिरों में कन्या पाठशालायें लगती हैं अथवा मंदिरों का कोई भाग किराये पर उठा दिया जाता है। यह विचित्र विडम्बना ही है कि जो आर्यसमाज बृहत्तर हिन्दू समाज के उपासना-स्थलों की रक्षा करने के लिए बड़े से बड़ा खतरा भी उठाने के लिए तैयार रहता है, उसी आर्यसमाज के अपने उपासनालय ही उपेक्षा के शिकार हैं।

अतः आवश्यकता इस बात की है कि आर्यसमाज मंदिरों को सच्चे अर्थों में उपासना स्थान बनाया जाय जहाँ जाने मात्र से ही व्यक्ति के हृदय में आध्यात्मिक भाव तरंगे उद्वेलित होने लगें तथा वह संध्योपासना, अग्निहोत्र, भजन एवं स्वाध्याय जैसे कृत्यों में पूर्ण अभिरुचि ले सके। समाज मंदिर का मुख्य उपासना भवन विशाल, महापुरुषों के चित्रों से सुसज्जित, हवन-पात्रों, स्वाध्याय योग्य ग्रन्थों तथा अन्य वस्तुओं से परिपूर्ण होना चाहिये। मंदिर में स्नानागार, शौचालय, सेवक के निवास आदि के लिए पृथक् स्थान होना अपेक्षित है। समाज के अधिकारियों का प्रमुख कर्त्तव्य है समाज मंदिर को एक भव्य, आकर्षक तथा प्रेरणास्पद स्वरूप प्रदान करना।

४. प्रचार और प्रसार के माध्यम

उपदेशक वर्ग :

कोई संस्था अपने विशाल भवनों, अट्टालिकाओं अथवा अन्य भौतिक संभारों के कारण न तो लोकप्रियता ही अर्जित करती है और न उसके द्वारा लोकहित साधन ही होता है। वस्तुतः संस्थाओं को प्राणवान् बनानेवाले वे उपदेशक तथा प्रचारक होते हैं जो

निश्चित ध्येय की पूर्ति के लिए 'कार्यं वा साधयेयम् शरीरं वा पातयेयम्' का लक्ष्य लेकर प्रचार-क्षेत्र में अवतरित होते हैं। निश्चय ही आर्यसमाज का स्वर्णयुग था जब पं० गुरुदत्त जैसे मनस्वी, पं० लेखराम जैसे बलिदान की भावना से सम्पन्न, स्वामी श्रद्धानन्द जैसे अपूर्व त्यागी तथा स्वामी दर्शनानन्द जैसे अध्ययनशील, तर्कपटु तथा विलक्षण उपदेशक प्रचार क्षेत्र में अपना योगदान कर रहे थे। उपदेशकों के प्रशिक्षण हेतु लाहौर में दयानन्द-उपदेशक-विद्यालय तथा आगरा में मुसाफ़िर-विद्यालय चलाया जाता था। इन उपदेशक-विद्यालयों में जहां वैदिक शास्त्र, अस्त्र, अन्य धर्मग्रन्थ, न्याय, दर्शन, तर्क आदि विषयों की उच्च कोटि की शिक्षा दी जाती थी वहाँ अध्येता छात्रों को वक्तृत्व-कला, शास्त्रार्थ-कला एवं वाद-विवाद का सर्वांगीण अभ्यास भी कराया जाता था। लाहौर का उपदेशक विद्यालय जहाँ स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी तथा स्वामी वेदानन्द जी जैसे महान् विद्वान् संन्यासियों के द्वारा संचालित होता था तो आगरे के आर्य-मुसाफ़िर विद्यालय की स्थापना पं० भोजदत्तजी ने उस अमर हुतात्मा आर्यपथिक लेखराम की स्मृति में की जिसने वैदिक धर्म के प्रचारार्थ अपने-आपकी आहुति दे डाली थी। पं० महेशप्रसाद मौलवी आलिम फाजिल, ठाकुर अमरसिंह जी (वर्तमान में अमर स्वामी सरस्वती) तथा कुंवर सुखलाल आर्य मुसाफिर जैसे योग्य उपदेशकों को जन्म देने का श्रेय मुसाफिर-विद्यालय को ही है।

केन्द्रीय उपदेशक विद्यालय की स्थापना

आज आर्यसमाज में उपदेशकों के प्रशिक्षण की कोई सुचारू एवं समुचित व्यवस्था नहीं है। इसाई धर्म-प्रचारक जिस प्रकार समर्पित जीवनवाले व्यक्तियों का चयन कर उन्हें धर्म प्रचार के लिए शिक्षण देते हैं, उसी प्रकार आर्यसमाज को भी एक केन्द्रीय-उपदेशक विद्यालय की अविलम्ब स्थापना करनी चाहिए। उपदेशक गण अपनी-अपनी रुचि के अनुसार विभिन्न अध्ययन सम्पन्न हों तथा

परमत समीक्षण में विशेष योग्यता (Specialisation) अर्जित करें। संगीत भी धर्म-प्रचार का एक सशक्त माध्यम है। यद्यपि आर्यसमाज में संगीत एवं भजनों के माध्यम से प्रचार करने की परिपाटी पर्याप्त पुरानी है किन्तु यह एक तथ्य है कि संगीत कला निष्णात भजनोपदेशकों की संख्या नगण्य है। अतः संगीत की उच्च शिक्षा की व्यवस्था होना भी आवश्यक है। उपदेशक वर्ग को समाज के अधिकारियों द्वारा पूर्ण सम्मान प्राप्त हो, अन्यथा जिस संस्था का उपदेशक-समाज अपने अनुयायियों का आदर भाजन न होगा, उसकी बात अन्य लोग क्यों सुनने लगे ?

साधु वर्ग

आर्यसमाज की स्थापना एक संन्यासी ने की थी जिसने लोकहित के लिए न केवल अपना वैभव सम्पन्न गृह तथा स्नेहास्पद माता पिता का ही परित्याग किया, अपितु जिसने मनुष्य के चरम लक्ष्य मोक्ष तथा उसके साधनभूत समाधि के आनन्द का भी परित्याग किया था। इस अद्वितीय अपरिग्रही, परिव्राजक शिरोमणि दयानन्द के आर्यसमाज में कालान्तर में उच्च कोटि के चतुर्थाश्रमी संन्यासी हुए जिन्होंने अपने त्याग, तपस्या तथा आत्मिक बल से देश, जाति और धर्म का अभ्युत्थान किया। स्वामी श्रद्धानन्द जैसे राजर्षि, स्वामी सर्वदानन्द जैसे वीतराग भिक्षु, महात्मा नारायण स्वामी जैसे नेतृत्व की अपूर्व क्षमता रखनेवाले संन्यासी तथा स्वामी वेदानन्द जैसे वैदुष्य के भण्डार परिव्राजकों पर आर्यसमाज उचित गर्व कर सकता है। खेद है कि आज आर्यसमाज के जीर्ण शीर्ण अंगों में संजीवनी शक्ति को संचार करनेवाले संन्यासियों का अभाव ही दृष्टिगोचर हो रहा है। यद्यपि वर्णाश्रम को मानव जीवन की एक आदर्श जीवन व्यवस्था के रूप में आर्यसमाज ने स्वीकार किया है किन्तु अपने क्रियात्मक जीवन में उसे उतारने वालों की संख्या स्वल्प ही है।

दयानन्द परिव्राजक मण्डल के अन्तर्गत वैदिक धर्म प्रचार के लिए कृतसंकल्प जीवनदानी साधुओं का संगठन होना आवश्यक है। इन्हीं संन्यासियों से यह अपेक्षा की जा सकती है कि वे आर्यसमाज के संस्थापक के स्वप्न को चरितार्थ करें तथा भूमण्डल के मानवों का वैदिकीकरण तथा आर्यकरण कर 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' के लक्ष्य की पूर्ति कर सकें। यह साधु मण्डल यदि रामकृष्ण मिशन में दीक्षित होनेवाले संन्यासियों की योग्यता, संकल्प शक्ति तथा सेवा भावना को अपना आदर्श मानकर चले तो सर्वोत्तम होगा। भारत के लाखों ग्राम आज वैदिक संस्कृति के उदात्त तत्वों को सुनने के लिए लालायित हो रहे हैं जबकि आज का स्वार्थान्ध राजनीतिज्ञ अपने राजनैतिक छलकपट एवं प्रपंचों को ग्रामों के स्वच्छ, सरल वातावरण में प्रविष्ट कराकर उसे दूषित कर रहा है। दयानन्द के मिशन को कृतकार्य करनेवाले ये संन्यासी यदि शिक्षा, चिकित्सा, सेवा तथा जन-शिक्षण के माध्यम से प्रचार कार्य करें तो देश को कोटि-कोटि जनता आर्यसमाज की ओर आकृष्ट हो सकती है।

अध्ययन और अनुसंधान की स्थिति

वस्तुतः महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज के माध्यम से जो विशाल धर्मान्दोलन किया, उसका सुदृढ़ आधार वेद प्रमाणवाद तथा आर्य ज्ञान का प्रोज्ज्वल प्रकाश ही था। वेद के प्रति उनकी प्रगाढ़ आस्था तथा अगाध निष्ठा का पता इसी बात से चलता है कि वेद प्रमाण को छोड़कर वे किसी प्रकार का अवसरवादी समझौता करने के घोर विरोधी थे। निश्चय ही, परवर्ती आर्य विद्वानों ने अपने विशद अध्ययन, अपार वैदुष्य तथा तल-स्पर्शी शास्त्रालोचन के द्वारा महर्षि के वैदिक दृष्टिकोण की यथार्थता का डिंडिम घोष समस्त संसार में किया है। आज न केवल भारतीय वैदज्ञ अपितु पाश्चात्य विपश्चित समुदाय भी वेदों के प्रति दयानन्द की धारणाओं तथा आस्थाओं की सत्यता स्वीकार करने लगा है तथा विभिन्न वेद-

भाष्यकारों तथा वेद व्याख्याकारों ने दयानन्द के वैदिक मन्तव्या की वैज्ञानिकता, युक्ति एवं तर्कपूर्णता तथा व्यावहारिक उपयोगिता को मान लिया है। अतः वेदानुसंधान तथा अन्वेषण कार्य को एक नवीन दिशा प्रदान करना आवश्यक है।

आर्यसमाज ने अपने जीवन के शतवर्षीय सुदीर्घकाल में वैयक्तिक और संस्थागत स्तर पर अध्ययन और अनुसंधान के कार्य को प्रगति प्रदान की। पं० भगवद्दत्त, पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक तथा पं० युधिष्ठिर मीमांसक आदि विद्वानों ने अपने मौलिक चिन्तन तथा विशद अध्ययन के बल पर वेदानुसंधान का मार्ग प्रशस्त किया। इसी प्रकार डी० ए० वी० कालेज लाहौर का शोध विभाग, गुरुकुल कांगड़ी, रामलाल कपूर ट्रस्ट, हरयाणा शोध संस्थान आदि के संस्थागत प्रयत्न भी श्लाघनीय हैं। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा पर्याप्त समय से वैदिक अनुसंधान के लिए उच्चतम स्तर पर प्रयत्न कर रही है। वेद की मान्यताओं पर तथा आर्यसमाज के मन्तव्यों पर विभिन्न क्षेत्रों से जो अनेक विध आक्रमण, आक्षेप तथा खण्डनात्मक चेष्टाएँ हो रही हैं उनका युक्तिपूर्ण समाधान तभी संभव है जब आर्यसमाज के अनुसंधान शील विद्वान् सर्वथा वैज्ञानिक परिपाटी से वैदिक शोध को गति दें।

केन्द्रीय पुस्तकालय और शोध-पत्रिका

अनुसंधान के लिये एक केन्द्रीय पुस्तकालय की महती आवश्यकता होगी। इस बृहद् पुस्तक भण्डार में जहाँ वैदिक वाङ्मय, प्राचीन आर्ष-विद्याओं तथा संस्कृत साहित्य की विभिन्न विधाओं से सम्बन्ध रखनेवाले दुर्लभ ग्रन्थों का संग्रह तो होना ही चाहिए, आर्यसमाज तथा उसके प्रवर्त्तक से सम्बन्ध रखनेवाली विपुल ऐतिहासिक शोध सामग्री का भी संकलन और संरक्षण आवश्यक है। यह सन्तोष का विषय है कि आज भारत तथा विदेशीय विश्वविद्यालयों में महर्षि के व्यक्तित्व तथा कृतित्व, उनके योगदान तथा

उनके दर्शन पर बहुविध शोध कार्य सम्पन्न हो रहा है। विभिन्न अनुसंधान प्रेमी लोग आर्यसमाज का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करते हुए समकालीन सुधारवादी आन्दोलनों से उसका तुलनात्मक समीक्षण भी कर रहे हैं। अब यह आर्यसमाज का ही दायित्व रह जाता है कि वह इस शोध कार्य को सुगमतया संपन्न कराने के लिए साधन प्रस्तुत करे। एक उच्च कोटि की अनुसंधान-पत्रिका का प्रकाशन भी आवश्यक है। इसका प्रकाशन अन्य शोध-पत्रिकाओं को भाँति त्रैमासिक हो, किन्तु इसमें प्रस्तुत की जाने-वाली सामग्री सर्वथा उच्चस्तरीय एवं विशिष्टतापूर्ण हो। आर्य-समाज की यह शोध-पत्रिका (Research Journal) अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति की होनी चाहिए।

निर्माण और प्रकाशन

साहित्य विचारों का वाहक होता है। आज के युग में प्रेस और प्लेटफार्म ही ऐसे साधन हैं जिनसे विचारों के प्रसार में सहायता ली जा सकती है। खेद है कि आर्यसमाज ने प्लेटफार्म का तो पूरा उपयोग किया परन्तु प्रेस-साहित्य को पर्याप्त उपेक्षा की। अमर शहीद पं० लेखराम की अन्तिम इच्छा को हम पूरा नहीं कर सके, जिन्होंने कहा था कि आर्यसमाज में तहरीर (लेखन) का काम बन्द नहीं होना चाहिए। आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द ने अपने अत्यन्त व्यस्त जीवन में साहित्य प्रणयन के लिए पर्याप्त समय निकाला और अल्प अवधि में ही सहस्रों पृष्ठों का साहित्य हमारे लिये दाय के रूप में छोड़ा। महर्षि के पश्चात् पं० लेखराम, पं० गुरुदत्त, स्वामी श्रद्धानन्द, पं० राजाराम, महामहोपाध्याय पं० आर्यमुनि पं० तुलसीराम स्वामी पं० चमूपति आदि विद्वानों नें साहित्य लेखन के क्षेत्र में अपूर्व कार्य किया और सहस्रों उच्चकोटि के ग्रन्थ लिखकर आर्यसमाज के सारस्वत भण्डार को समृद्ध किया। परन्तु कालान्तर में हमने साहित्य साधना के प्रति उपेक्षा

आरम्भ की। आज तो स्थिति इतनी विषम हो गई है कि दो-चार गणमान्य लेखकों के अतिरिक्त हमें साहित्य का क्षेत्र सर्वथा शून्य ही दृष्टिगोचर होता है।

आर्यसमाज-जैसे आन्दोलन के लिए जो केवल इस देश के ही नहीं, अपितु संपूर्ण मानव जाति के योग-क्षेम के वहन का दायित्व लेता है, साहित्य की उपेक्षा घातक है। विभिन्न धार्मिक, राजनैतिक तथा अन्य विचारधाराओं का प्रचार करनेवाली संस्थाएँ साहित्य के माध्यम से अपनी मान्यताओं का किस प्रकार व्यापक प्रचार करती है इसे सिद्ध करने के लिए उदाहरण देना आवश्यक नहीं है। पौराणिक विचारधारा का प्रचार गीताप्रेस, गोरखपुर के माध्यम से होता है। नार्थ इण्डिया क्रिश्चियन बुक एण्ड ट्रैक्ट सोसाइटी इसाई मत के प्रचार में विगत सौ वर्ष से निरन्तर सहयोग कर रही है। साम्यवादी दल तथा राष्ट्रीय स्वय संघ जैसे वामपक्षी राजनैतिक दल तथा दक्षिण पन्थी संगठन भी व्यापक स्तर पर साहित्य के लेखन और प्रकाशन के द्वारा अपनी विचारधारा के प्रचार में संलग्न हैं।

हमारे समक्ष रामकृष्ण मिशन की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ आदर्श रूप में उपस्थित हैं। १९६४ ई० में स्वामी विवेकानन्द की जन्म शताब्दी के अवसर पर रामकृष्ण, विवेकानन्द की विचारधारा का साहित्य अत्यन्त सुरुचिपूर्ण ढंग से देश विदेश की अनेक भाषाओं में प्रकाशित किया गया। विवेकानन्द ग्रन्थावली के रूप में संपूर्ण विवेकानन्द साहित्य को सुव्यवस्थित ढंग से प्रकाशित करना एक उपलब्धि थी। आर्यसमाज को भी अपनी स्थापना की शताब्दी के अवसर पर साहित्य-लेखन एवं प्रकाशन की एक बृहद् योजना कार्यान्वित करनी चाहिए। महर्षि दयानन्द रचित समस्त ग्रन्थों का एक ही आकार की ग्रन्थावली में प्रकाशन तथा व्यापक प्रचार तो अपेक्षित है ही, साथ ही धर्म, दर्शन, वैदिक तत्वालोचन, तुलनात्मक

पुराण प्रतिपादित मत का व्यापक प्रचार कर रहा है। पांचजन्य, राष्ट्रधर्म तथा आर्गेनाइजर आदि पत्र भी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विचारों का देशव्यापी प्रचार करते के उत्कृष्ट माध्यम हैं।

हिन्दी-अंग्रेजी के दैनिक

आर्यसमाज भी अपने पत्रों को महर्षि के संदेश का उद्घोषक एवं प्रचारक बनाकर वैदिक विचारधारा को विश्व व्याप्ति प्रदान करे, एतदर्थं हमें निम्न सुझावों पर ध्यान देना होगा।

(१) आर्यसमाज का एक प्रभावशाली दैनिक-पत्र हो जो सामान्य समाचारों के साथ-साथ आर्यसमाज के दृष्टिकोण को भी जनता तक पहुँचाये।

(२) हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा में भी एक उच्चकोटि का मासिक-पत्र प्रकाशित किया जाए जो आर्यसमाज के वेद विषयक दृष्टिकोण को अंग्रेजी भाषी पाठकों तक पहुँचाने में समर्थ हो।

(३) संस्कृत के विद्वन्मण्डल तथा गीर्वाण वाणी के प्रेमी पाठकों के लिए संस्कृत भाषा में एक साहित्यिक विचारप्रधान पत्रिका का प्रकाशन भी आवश्यक है।

(४) विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं में भी आर्यसमाज की विचारधारा का वहन करनेवाले साप्ताहिक एवं मासिक-पत्र प्रकाशित हों, जिनमें वेद व्याख्या, सिद्धान्त चर्चा, नारी संसार, बाल जगत्, शंका समान आदि के विविध उपयोगी एवं रोचक स्तम्भ रहें।

प्रत्येक आर्यसमाज में सुव्यवस्थित पुस्तकालय और शोध व्यवस्था

आर्यसमाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द ने अपनी संस्था को बौद्धिक धरातल पर प्रतिष्ठित किया था। उनकी यह हार्दिक कामना रही कि आर्यसमाज का प्रत्येक सभासद प्रबुद्ध अभिरुचि सम्पन्न, विचार-

शील, मनस्वी तथा मेधावी हो। इसी दृष्टि से उन्होंने आर्यसमाज के विधान में एक पुस्तकाध्यक्ष का पद भी रखा जो प्रत्येक आर्यसमाज में पुस्तकालय का संचालन करता है। आर्यसमाज की पुरानी पीढ़ी के व्यक्ति अत्यधिक स्वाध्यायशील तथा शास्त्रीय अध्ययन में रुचि लेने वाले होते थे। वस्तुतः, किसी भी अन्य धार्मिक या राजनैतिक सभा में पुस्तकाध्यक्ष जैसा न तो कोई पद है और न वहाँ पुस्तकालयों की व्यवस्था का ही विधान है।

जहाँ आर्यसमाज की कार्यप्रणाली में स्वाध्याय को संबल प्रदान करनेवाले पुस्तकालयों की सुरक्षा और संचालन का प्रावधान रखा गया, वहाँ यह अनुभव कर पीड़ा भी होती है कि आज आर्यसमाजों के पुस्तकालय और पुस्तकाध्यक्ष सर्वाधिक उपेक्षा तथा तथा अवगणना के शिकार हो रहे हैं। चुनावों की दलबन्दी के फलस्वरूप चाहे किसी अपने पक्ष समर्थक को पुस्तकाध्यक्ष के पद पर आसीन कर दिया जाए परन्तु निर्वाचन के पश्चात् यह कभी अपेक्षा नहीं रखी जाती कि पुस्तकाध्यक्ष अपने कर्तव्य पालन में कितनी तत्परता तथा दक्षता प्रदर्शित कर रहा है। यद्यपि विभिन्न आर्यसमाजों के प्राचीन पुस्तकालयों में सहस्रों संख्या में दुर्लभ, प्राचीन एवं अलभ्य ग्रन्थ रत्न पड़ं पड़े सड़ रहे हैं अथवा दीमकों के आहार बन रहे हैं, परन्तु न तो उन्हें पाठकों के लिए ही सुलभ बनाया जाता है और अनुसंधान एवं शोध के क्षेत्र में कार्य करने वाले विद्वान् ही उनका उपयोग ले पाते हैं।

अतः आवश्यक है कि केन्द्रीय एवं प्रान्तीय राजधानियों में आर्यसमाज के विशाल ग्रन्थालय रहें। इन पुस्तकालयों की देखरेख ऐसे अध्ययनशील व्यक्तियों के जिम्मे रखी जाए जो स्वयं पुस्तकों के वैज्ञानिक संरक्षण को जानते हों। पुस्तकालयों के साथ-साथ अध्ययन प्रिय छात्रों तथा शोध विद्वानों के निवास की व्यवस्था भी रहे, जहाँ वे पर्याप्त समय तक ठहरकर अपना अध्ययन-कार्य कर सकें।

समाजों के वार्षिक बजट में नई पुस्तकों के क्रय हेतु पर्याप्त राशि का प्रावधान होना चाहिए। प्रत्येक आर्यसमाज के ग्रन्थालय में वेद, उपनिषद्, स्मृति, दर्शन, वेदांग, दयानन्द वाङ्मय तथा अन्य उपयोगी ग्रन्थ प्रचुर मात्रा में रहने चाहिए। पुस्तकालयों के अन्तर्गत पुस्तक विक्रय विभाग भी रहें जिनमें नवीन प्रकाशित पुस्तकों को आर्य-समाजतर पाठकों तक पहुँचाने की व्यवस्था हो।

आर्यसमाज की विभिन्न प्रवृतियों तथा उपलब्धियों पर आज स्वदेशी तथा विदेशी विश्वविद्यालयों में जो बहुविध अनुसंधान कार्य हो रहे हैं तथा प्रति वर्ष अनेक विदेशी विद्वान् भारत में आकर आर्यसमाज विषयक साहित्य का अनुसंधान करते हैं उनकी सुविधा के लिए आर्यसमाज से संबधित समग्र प्रकाशित साहित्य की एक विशाल सूची (Bibliography) तैयार कराकर उसे प्रकाशित किया जाना चाहिए। इस ग्रन्थ-सूची में समस्त ग्रन्थों को विषयानुसार वर्गीकृत किया जाए तथा यथासंभव लेखक, प्रकाशक, प्रकाशनकाल तथा संस्करण का भी उल्लेख रहे। इसी प्रकार आर्य-समाज के साहित्य का इतिहास भी तैयार किया जाना चाहिए तथा विभिन्न भाषाओं में लेखन-कार्य करनेवाले दिवंगत एवं विद्यमान आर्य लेखकों का विवरण एकत्रित किया जाना भी आवश्यक है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि महर्षि द्वारा निर्दिष्ट कार्य-प्रणाली को स्वीकार कर तथा उसमें युगानुकूल संशोधन एवं परि-वर्धन कर हम आर्यसमाज के माध्यम से उसके संस्थापक के दिव्य स्वप्नों को साकार करने में समर्थ हो सकते हैं।

(६) कर्मकाण्ड एवं संस्कार

धर्म का वाह्य रूप कर्मकाण्डों का आचरण तथा विभिन्न धार्मिक क्रियाओं का सम्पादन ही होता है। 'न लिंग धर्मं' कारण मनु की यह उचित यद्यपि तत्वार्थ में पूर्णतया सत्य है तथापि इसका

यह अर्थ नहीं है कि धर्म के निदर्शक बाह्य कर्मों को किंचित्-मात्र भी महत्व नहीं दिया जाए। वैदिक धर्म तो ज्ञान, कर्म और उपासना के सामंजस्य पर ज़ोर देता है। महर्षि दयानन्द ने मूर्तिपूजा, तीर्थ यात्रा, प्रतीकोपासना, कण्ठी, माला, तिलकधारण आदि मध्यकालीन साम्प्रदायिक क्रिया-कलापों का खण्डन कर उनके स्थान पर ईश्वरोपासना के आधारभूत संध्या, प्राणायाम, अग्निहोत्र तथा पंच महायज्ञादि उदात्त एवं मानव शरीर, मन एवं आत्मा का परिष्कार करने में साधन भूत कर्मों का प्रचार किया। यज्ञ की आर्ष एवं पुरातन परिपाटी को भी ऋषि ने ही पुनः प्रचलित कर उसके भौतिक एवं आध्यात्मिक स्वरूप का विशद निरूपण किया। यज्ञ का व्युत्पत्ति लभ्य विशद अर्थ करते हुए स्वामीजी ने उसे समस्त लोकोपकारी तथा प्राणि-हित विधायक कर्मों का प्रतीक माना है। 'पंच महायज्ञ विधि' की रचना कर महर्षि ने आर्यों के लिए एक प्रशस्त दैनन्दिन कर्तव्य विधान भी उपस्थित किया।

कर्मकाण्ड में एकरूपता आवश्यक

यह सब कुछ होते हुए भी हम देखते हैं कि आर्यों के कर्मकाण्ड में समानता तथा एकरूपता का नितान्त अभाव है। भारतीय हिन्दू (आर्य) समाज के संगठन तथा दृढ़ीकरण के लिये अपनाये जाने वाले साधनों में एक साधन जो स्वामीजी ने स्वीकार किया, वह था सामूहिक उपासना-प्रणाली का प्रचलन। उदयपुर में निवास करते समय स्वामीजी ने पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या के समक्ष अपना विश्वास व्यक्त कर कहा था कि जब तक इस देशवासियों में एक धर्म, एक भाषा, एक-सा आचार-विचार तथा परेश पूजा की एक ही प्रणाली का प्रचार नहीं होगा तब तक आर्य जाति विधर्मियों तथा विदेशियों द्वारा त्रस्त, अपमानित तथा पददलित होती रहेगी। इसी परिप्रेक्ष्य में हमें यह विचार करना है कि यदि आर्यसमाज का संध्या और अग्निहोत्र विधान तथा उसके अन्य धार्मिक कृत्यों में

यदि एकतानता नहीं रही तो वह अन्य लोगों को सार्वत्रिक एकता का उपदेश कैसे दे सकता है ?

अतः इस बात की महती आवश्यकता है कि आर्यसमाज की सर्वोच्च संस्था सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा अपने अनुशासनात्मक आदेशों के द्वारा कर्मकाण्ड में एक रूपता लाने के लिए पूर्णतः सचेष्ट हो। संध्या, अग्निहोत्र तथा अन्य कर्मों के विधायक ग्रन्थों का प्रकाशनाधिकार मात्र धर्मार्य सभा को ही रहना चाहिये। यदि अन्य प्रकाशक भी इन ग्रन्थों को छापें तो उनमें संशोधन एवं परिवर्धन न कर सकें। उपदेशकों तथा विद्वानों का भी यह कर्तव्य है कि वे जहाँ प्रचारार्थ जाएँ, वहाँ के आर्यों के कर्मकाण्ड विधान का सूक्ष्मता से निरीक्षण एवं परीक्षण करें तथा उसमें विद्यमान न्यूनाधिकता का संशोधन करें। बृहद् यज्ञ पद्धतियों का निर्धारण यथासंभव प्राचीन कल्प सूत्रों के आधार पर होना चाहिए परन्तु देश, काल एवं परिस्थितियों के अनुसार यदि उनमें कुछ परिवर्तन भी किया जाता है तो उसे सहन करना ही होगा। कर्मकाण्ड के आचरण में जहाँ भावनाओं और आन्तरिक श्रद्धा का महत्व होता है वहाँ उसका बाह्य प्रदर्शनात्मक स्वरूप भी कुछ कम महत्त्व नहीं होता। अतः यह भी आवश्यक है कि ऐसे आयोजनों में स्वदेशी वस्त्र तथा एतद्देशीय सांस्कृतिक परिधानों को ही महत्त्व दिया जाए। कर्मकाण्ड को सरल, उपयोगी तथा एकता विधायक बनाना होगा।

संस्कारों की उपेक्षा : पौरोहित्य प्रशिक्षण

कर्मकाण्डों पर विचार करने के प्रसंग में ही षोडश संस्कारों के विधान एवं प्रचलन पर विचार करना भी आवश्यक है। महर्षि ने मानव शरीर, मन एवं आत्मा के सर्वांगीण विकास हेतु संस्कारों को आवश्यक बताया है। विभिन्न गृह्य-सूत्रों के आधार पर उन्होंने एक सर्वमान्य संस्कार विधि की रचना की जो आर्यों का गृह्य-विधान है। स्वामीजी ने अपने जीवनकाल में विभिन्न लोगों को गायत्री मंत्र

की दीक्षा दी, उन्हें संध्योपासना पद्धति सिखाई, कई युवा एवं प्रौढ़ व्यक्तियों का उपनयन संस्कार सम्पन्न कराया तथा अन्य सभी संस्कार वेदोक्त रीति से करने की परिपाटी का प्रचलन किया। आर्यसमाज ने भी अपने प्रवर्तक के आदेश को स्वीकार कर संस्कारों का प्रचार द्रुतगति से किया।

यहाँ यह देखना अप्रासंगिक नहीं होगा कि आर्यसमाज में प्रचलित संस्कारों की वस्तुस्थिति क्या है तथा उनमें कौन से परिवर्तन अभीष्ट हैं। संस्कारविधि वर्णित १६ संस्कार तो शायद ही किसी आर्य परिवार में संपूर्णतया किये जाते हों। आज के वासना-प्रधान युग में गर्भाधान संस्कार की तो चर्चा ही व्यर्थ है। पुसंवन, सीमन्तोनयन तथा गर्भाधान जैसे संस्कार भी शास्त्रोक्त विधि से सम्पन्न नहीं किये जाते। मुख्यता नामकरण, चूड़ाकर्म, यज्ञोपवीत, तथा विवाह-संस्कार ही वैदिक विधि से सम्पन्न कराये जाते हैं। वस्तुतः संस्कारों के प्रति हमारी उपेक्षा का ही परिणाम है कि उसके अपेक्षित लाभ हमें प्राप्त नहीं होते। आवश्यकता इस बात की है कि संस्कारों को पूर्ण भावना, श्रद्धा तथा तत्परता के साथ कराया जाए। इसके लिए पौरोहित्य कर्म का प्रशिक्षण योग्य व्यक्तियों को दिया जाना चाहिये। संस्कारों को सादगी के साथ सम्पन्न करना आवश्यक है। अनावश्यक आडम्बर तथा धन का अपव्यय संस्कारों के महत्त्व को धूमिल बना देता है। साथ ही इस बात का भी ध्यान रखा जाना आवश्यक है कि संस्कार के लिए आवश्यक सभी वस्तुएँ तथा अन्य सामग्री विधिपूर्वक जुटाई जाए। पुरोहित को श्रद्धापूर्वक दक्षिणा देना संस्कार का एक अपिरिहार्य अंग है।

(७) युवा शक्ति की विशिष्टता

अब तक हमने आर्यसमाज से संबंधित कुछ उन समस्याओं का उल्लेख किया है जो उसके आन्तरिक विधान, प्रचार-प्रणाली

साहित्य, कर्मकाण्ड तथा अन्य प्रासंगिक विषयों से सम्बद्ध हैं। परन्तु सर्वोपरि समस्या तो किसी संस्था के अनुयायियों में जागृत, उत्साही तथा अदम्य युवक शक्ति के अभाव के कारण उत्पन्न होती है। आर्यसमाज के अतीतकाल के नेताओं ने इस तथ्य को भलीभाँति हृदयगम किया था कि वैदिक विचारधारा के प्रचार एवं प्रसार में युवा वर्ग को किस प्रकार नियोजित किया जा सकता है। लाहौर आर्यसमाज के प्रथम प्रधान लाला सांईदास सदैव इस बात का यत्न करते थे कि होनहार युवक समाज में प्रविष्ट हों। जिस समय महात्मा हंसराज, लाला लाजपतराय तथा महात्मा मुन्शीराम (कालान्तर में स्वामी श्रद्धानन्द) जैसे आर्य नेताओं ने युवक रूप में आर्यसमाज में प्रवेश किया उस समय वयोवृद्ध लाला सांईदास भाव-विभोर हो उठे थे।

आर्यकुमार सभा और आर्यवीर दल

आर्य युवकों को आर्यसमाज में प्रविष्ट होने से पूर्व वैदिक धर्म तथा आर्य संस्कृति की दीक्षा देने हेतु आर्यकुमार परिषद् की स्थापना स्व० डॉ० केशवदेव शास्त्री ने की। समय-समय पर अनेक सुयोग्य आर्य नेताओं का मार्गदर्शन आर्य युवक समुदाय को मिलता रहा। दिल्ली के स्वर्गीय नेता लाला देशबंधु गुप्त, डॉ० युद्धवीरसिंह यहाँ तक कि स्व० बैरिस्टर आसफअली भी दिल्ली आर्यकुमार सभा के निकट सम्पर्क में आये थे। आर्यकुमार परिषद् की ही भांति आर्य वीर दल का संगठन भी युवक वर्ग को शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक दृष्टि से सुसंगठित तथा शक्ति सम्पन्न बनाने हेतु किया गया। आर्यकुमार आन्दोलन का सिद्धान्त वाक्य था 'विद्या धर्मेण शोभते' तो आर्य वीरों ने 'अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्तु' कहकर 'वीर भोग्या वसुन्धरा' का जयघोष किया। अज्ञान, अन्याय और अभाव को समाप्त कर समाज में व्याप्त अनाचार, विषमता तथा पाखण्ड का ध्वंस ही आर्य-वीर-दल का लक्ष्य रहा है। अपने ध्येय

प्रदर्शित करनी अध्ययन आदि विभिन्न विषयों पर उत्कृष्ट ग्रन्थों का लेखन भी अभीष्ट है। उच्चकोटि का साहित्य लिखा जाए, इसके लिए लेखकों को प्रोत्साहित करना भी आवश्यक है। महर्षि दयानन्द पुरस्कार तथा पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय स्मारक पुरस्कार के द्वारा भी लेखकों को उच्च स्तरीय लेखन की प्रेरणा मिल सकती है।

देश विदेश की विभिन्न भाषाओं में साहित्य

आर्यसमाज ने भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी में तो प्रचुर साहित्य लिखा है, परन्तु अन्य भारतीय भाषाओं तथा विदेशी भाषाओं में उसका मौलिक अथवा अनूदित साहित्य स्वल्प मात्रा में ही है। यद्यपि महर्षि रचित सत्यार्थ प्रकाश का अनुवाद भारत की विभिन्न भाषाओं में हुआ है, परन्तु इस क्रान्तिकारी ग्रन्थ को बाइबिल की ही भांति विश्व की अधिकांश भाषाओं में रूपान्तरित किया जाना चाहिये। आज दक्षिण भारतीय तमिल, तेलुगु, कन्नड तथा मलायलम भाषाओं में आर्यसमाज के सिद्धान्तों का दिग्दर्शन करानेवाले ग्रन्थ स्वल्प ही हैं। इसी प्रकार आदिवासी, पहाड़ी तथा जनजातियों की बोलियों में भी वैदिक धर्म का प्राणवान् संदेश गुंजरित हो इसके लिए आवश्यक है एक विशाल **साहित्यसंगम** (अकादमी) अनुवाद केन्द्र की स्थापना। आर्यसमाज के सर्वोच्च संगठन सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्वावधान में आर्यसमाज का केन्द्रीय साहित्य प्रकाशन संस्थान स्थापित होना चाहिए। प्रान्तीय सभाएँ अपने-अपने प्रान्तों की बोलियों और भाषाओं में साहित्य लेखन तथा अनुवाद का कार्य सम्पन्न करा सकती हैं। साहित्य का मुद्रण एवं प्रकाशन भी एक कला है, अतः गेटअप छपाई, सफ़ाई, साजसज्जा तथा नयनाभिराम मुखपृष्ठ आदि की ओर ध्यान देना भी आवश्यक है।

पत्र-पत्रिकाओं द्वारा प्रचार

आर्यसमाज अपने शैशवकाल से ही पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से

अपनी विचारधारा का प्रचार कर रहा है। स्वामी दयानन्द ने फर्रुखाबाद से 'भारत सुदशा प्रवर्तक' नामक मासिक पत्र के प्रकाशन की प्रेरणा दी। वैदिक-यन्त्रालय के प्रथम व्यवस्थापक मुन्शी बख्तावरसिंह ने 'आर्य दर्पण' का प्रकाशन भी महर्षि के जीवन काल में ही किया था। तब से लेकर एक शताब्दी का समय हुआ आर्यसमाज ने पत्र-पत्रिकाओं को महर्षि के स्वपनों की पूर्ति का सशक्त माध्यम स्वीकार किया है। आर्यसमाज ने हिन्दी जगत् को समर्पित व्यक्तित्ववाले, उच्चकोटि के आदर्श पत्रकारों की एक जीवन्त परम्परा ही प्रदान की है। सम्पादकाचार्य पं० रुद्रदत्त शर्मा पद्मसिंह शर्मा, डा० हरिशंकर शर्मा, पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति आदि तो आर्यसमाज के वे गण्यमान्य पत्रकार हैं जिन्होंने अपना समस्त जीवन ही इस कार्य हेतु समर्पित कर दिया था।

खेद है कि आज आर्यसमाज के पत्रों की स्थिति न तो सुखद है और न सन्तोषप्रद। संख्यात्मक दृष्टि से भले ही आर्यसमाज की पत्र-पत्रिकाएँ अधिक संख्या में छपती हों परन्तु गुणात्मक दृष्टि से उन्हें संतोषप्रद नहीं कहा जा सकता। न तो ये पत्र आर्थिक दृष्टि से ही स्वावलम्बी हैं और न इनमें रोचक, उपयोगी अथवा प्रेरणास्पद सामग्री का ही प्रकाशन होता है। अधिकांश पत्र सभा-संस्थाओं के मुखपत्र (गजट) ही होते हैं जिनमें सामयिक अधिकारियों के संस्तवन अथवा प्रशस्तिपाठ के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। इन पत्रों की ग्राहक संख्या इतनी न्यून होती है कि ये आजीवन घाटे में ही चलते हैं। जहाँ आर्यसमाज के पत्रों की यह स्थिति है, वहाँ अन्य धर्म एवं मत सम्प्रदायों के पत्र अत्यन्त सुव्यवस्थित तथा आकर्षक ढ़ग से प्रकाशिक होकर लाखों पाठकों तक अपनी विचारधारा का प्रसार करते हैं। क्या इसे अस्वीकार किया जा सकता है कि गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित होनेवाले मासिक-पत्र 'कल्याण' के लाखों ग्राहक हैं तथा वह अपने साधारण एवं विशेषांकों के माध्यम से

की पूर्ति के लिए वर्णाश्रम व्यवस्था का वास्तविक स्वरूप लोगों के समक्ष उपस्थित करना तथा उस आदर्श समाज व्यवस्था की स्थापना हेतु यत्न करना आर्य वीर दल का प्रमुख कार्यक्रम है।

युवाजन के लिए आकर्षक कार्यक्रम

यह सब कुछ होने पर भी युवक वर्ग आर्यसमाज के प्रति कुछ अधिक आकृष्ट नहीं है। इसके अनेक मनोवैज्ञानिक तथा अन्य कारण हैं। युवकों के लिए जिस कार्यक्रम की अपेक्षा होती है वैसा कार्यक्रम बहुत कुछ विचार करने के पश्चात भी आर्यसमाज नहीं बना पाया है। अतः हमें इस बात पर पुनर्विचार करना होगा कि युवक शक्ति का आर्यसमाज में प्रवेश किस प्रकार हो? यदि आर्यसमाज की वृद्ध पीढ़ी ने नवयुवक वर्ग के लिये स्थान रिक्त नहीं किया तो नये रक्त के अभाव में यह सशक्त एवं जीवन्त संस्था भी मरणासन्न हो सकती है। युवक वर्ग के लिए जहाँ आर्यसमाज की विचारधारा को सुव्यवस्थित, तर्कपूर्ण तथा सहज ग्राह्य ढंग से प्रस्तुत करना आवश्यक है, वहाँ उनके लिए कुछ सक्रिय आयोजन भी रखने होंगे। विचार गोष्ठियाँ, स्नेह सम्मेलन, आकस्मिक विपत्ति के अवसरों पर सेवा दलों का संगठन आदि ऐसे कार्यक्रम हैं जिनमें युवकों की सहज रुचि होती है। देश की राजनैतिक तथा आर्थिक समास्याओं के प्रति आर्यसमाज के दृष्टिकोण को भी स्पष्ट किया जाना आवश्यक है। युवकों का ऐसी समस्याओं के प्रति सहज आकर्षण होता है। अतः यदि राजनीति और अर्थनीति के क्षेत्र में उनका उचित मार्ग दर्शन नहीं किया जाता तो वे अन्य अतिवादी दक्षिण पंथी अथवा अनीश्वरवादी, नैतिक मूल्यों से विहीन वामपंथी राजनैतिक दलों की ओर झुक जाएँगे। आर्यसमाज ने अब तक देश तथा मानवता के समक्ष उपस्थित आर्थिक चुनौतियों के प्रति जो उपेक्षा भाव प्रदर्शित किया है उसी का यह परिणाम है कि सुदृढ़ सैद्धान्तिक आधार पर प्रतिष्ठित होने तथा व्यापक प्रगतिशील

विचारधारा का समर्थक होते हुए भी आर्यसमाज आज के जन-जीवन को प्रभावित नहीं कर सका है।

(८) आर्यसमाज और दक्षिण भारत

आर्यसमाज जिस वैदिक धर्म का प्रतिपादन एवं प्रचार करता है वह सार्वभौम, सार्वकालिक तथा सार्वजनीन है। आर्यसमाज के मुख्य ध्येय का उल्लेख करते हुए उसके छठे नियम में कहा गया है कि संसार का उपकार करना ही इस समाज का मुख्य उद्देश्य है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर आर्यसमाज के प्रवर्तक ने अपनी शिक्षाओं को सार्वदेशिक रूप प्रदान किया। यह सत्य है कि महर्षि के दिवंगत हो जाने के पश्चात् उनके अनुयायियों ने आर्यसमाज के सिद्धान्तों का व्यापक प्रचार किया तथापि यह भी उतना ही सत्य है कि उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में आर्यसमाज का प्रचार नगण्य ही रहा। स्वयं स्वामी दयानन्द भी अपने व्यस्त पर्यटनकाल में दक्षिण की काशी पूना तक ही अपने संदेश का प्रसार कर सके थे। आज भी हम देखते हैं कि महाराष्ट्र, आन्ध्र तथा कर्नाटक के कुछ भागों में आर्यसमाज के नाम तथा कार्यों से कुछ लोग भले ही परिचित हों, परन्तु केरल तथा तामिलनाडु जैसे प्रान्तों में आर्यसमाज एक अपरिचित संस्था ही है। इसी प्रकार बंगाल, आसाम तथा उड़ीसा आदि पूर्वीय प्रदेशों में भी आर्यसमाज मुख्यतः उत्तर भारतीय लोगों के माध्यम से ही पदारोपण कर सका है। वहां के मूल निवासियो में उसका प्रवेश अभी भविष्य की वस्तु है।

सर्वप्रथम ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी तथा अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी का ध्यान दक्षिण भारत में आर्यसमाज के प्रचार की ओर गया था। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने ता पं० धर्मदेवजी विद्यावाचस्पति तथा पं० केशवदेव जी ज्ञानी आदि विद्वानों के माध्यम से दक्षिण प्रान्तस्थ जनता को वैदिक धर्म का स्फुर्तियुक्त संदेश प्रेरित

किया । इन धर्म प्रचारकों ने बंगलोर, मद्रास, मैसूर आदि नगरों को अपना केन्द्र बनाकर महत्वपूर्ण प्रचार कार्य किया । उन्होंने स्थानीय भाषाओं के माध्यम से लेखन किया तथा उपदेश दिया । तमिल, तेलुगु, व कन्नड तथा मलयालम भाषाओं में सत्यार्थ प्रकाश के अनुवाद प्रकाशित किये गये तथा लघु पुस्तकें भी प्रकाशित हुई । मलावार प्रान्त में जब मोपला मुसलमानों ने धर्मान्धता का नग्न प्रदर्शन करते हुए हिन्दू समाज पर व्यापक अत्याचार किये तो महात्मा हंसराज के आदेश पर लाला खुशहालचन्द (वर्तमान महात्मा आनन्द स्वामी) के नेतृत्व में आर्य प्रादेशिक सभा के कार्यकर्ता दक्षिण पहुंचे तथा त्रिवेन्द्रम को अपना केन्द्र बनाकर सेवा कार्य करते रहे । इस निष्काम सेवा कार्य का केरल की जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा था ।

परन्तु आज आर्यसमाज के पास दक्षिण भारत के लोगों के लिये संदेश तो है परन्तु उसे पहुंचाने का माध्यम नहीं है । यदि आर्य-समाज तमिलनाडु तथा दूर दक्षिण की भारतीय प्रजा से अपना सम्पर्क सूत्र स्थिर रखता तो भाषा, क्षेत्रीयता तथा आर्य-द्रविड संस्कृति के नाम पर जो विघटनकारी, दूषित प्रवृतियाँ दक्षिण भारत के कुछ भागों में पनप रही हैं वे जड़ जमा नहीं पातीं । कितने खेद की बात है कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करने वाला आर्यसमाज दक्षिण में हिन्दी प्रचार का भी कोई उपयोगी और व्यावहारिक कार्यक्रम संचालित नहीं कर सका । फलतः महात्मा गांधी को ही दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के माध्यम से यह कार्य करना पड़ा । आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द तो हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तथा सौराष्ट्र से लेकर ब्रह्मदेश पर्यन्त जिस विशाल आर्यावर्त देश में वैदिक धर्म का अविच्छिन्न वर्चस्व देखना चाहते थे उसे कार्यान्वित करने के लिये दक्षिण और

पूर्व के इन प्रान्तों में आर्यसमाज को अपनी गतिविधियाँ तीव्रता से संचालित करनी चाहिए, जहाँ वे नगण्य-सी हैं। इन प्रान्तों में प्रतिनिधि सभाओं का संगठन किया जाए तथा साहित्य प्रचार, सेवा कार्य एवं जन-जागरण के अन्य साधनों द्वारा आर्यसमाज का संदेश घर-घर में प्रसारित किये जाने की व्यवस्था हो।

यह एक सुविदित तथ्य है कि सीमान्त प्रान्तों में तथा केरल के अधिकांश भागों में विदेशी ईसाई धर्म प्रचारक केन्द्र बनाकर जहाँ अपना धर्म प्रचार कर भोली-भाली अशिक्षित एवं निर्धन हिन्दू प्रजा को अपने धर्म में दीक्षित करते हैं वहाँ उनमें राष्ट्र विरोधी गतिविधियों को प्रोत्साहित कर देश की सुरक्षा तथा एकता को भी आघात पहुँचाते हैं। अतः आर्यसमाज के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह दक्षिण भारत में औषधालय, सेवा केन्द्र तथा सांस्कृतिक केन्द्रों की स्थापना कर विदेशी धर्म प्रचारकों की अराष्ट्रीय प्रवृतियों का मुकाबला करें तथा वैदिक धर्म एवं संस्कृति का प्रौज्जवल पक्ष वहाँ के लोगों के समक्ष प्रस्तुत कर समग्र देश की भावात्मक एकता का सेतु बने।

आर्यसमाज और अन्तर्राष्ट्रीय प्रचार

महर्षि दयानन्द ने जहाँ आर्यसमाज के सिद्धान्तों और मन्तव्यों को एक सार्वभौमिक स्वरूप प्रदान किया था, वहाँ वे अपनी स्थानापन्न परोपकारिणी सभा को भी यह आदेश दे गये थे कि देश-देशान्तरों तथा द्वीप-द्वीपान्तरों में वैदिक धर्म का प्रचार किया जाय। आर्यसमाज द्वारा प्रतिपादित वैदिक धर्म, देश, काल, वर्ण तथा रंग की सीमाओं से ऊपर उठकर मनुष्य को वास्तविक मानव बनाने की बात कहता है अतः उसे मानव धर्म का ही पर्याय मानना चाहिए। इसी कारण आर्यसमाज के नेताओं का ध्यान उन देशों की ओर भी गया जहाँ भारत मूल के लोगों का निवास था, अथवा

विगत शताब्दी में ही प्रवासी भारतीयों ने उन देशों में जाकर उपनिवेशों की स्थापना कर ली थी। दक्षिण और पूर्वी अफ्रीका, मारिशस, फीजी, गाइना आदि ऐसे देश हैं, जहाँ भारतीयों की संख्या पर्याप्त अधिक है। इन देशों में जहाँ भारतीय रीति-नीति धर्म और परम्परा, संस्कृति और भाषा किसी-न-किसी रूप में शेष थी, आर्यसमाज का प्रचार सुगम रीति से हो सकता था। फलतः इस शताब्दी के प्रारम्भ से ही आर्यसमाजी, धर्म प्रचारकों ने अपनी विदेश प्रचार यात्राएँ की। स्वामी शंकरानन्द, भाई परमानन्द, स्वामी स्वतंत्रानन्द, स्वामी भवानीदयाल संन्यासी, मेहता जैमिनी तथा डॉ० चिरंजीव भारद्वाज आदि ख्यातनामा वक्ता, प्रचारक तथा धर्मोपदेशक समय-समय पर इन देशों की यात्रा कर वहाँ के लोगों में उत्पन्न धर्म जिज्ञासा को शान्त करते रहे तथा उनकी आध्यात्मिक पिपासा को संतुष्ट करने के लिए धर्म संस्कृति की निर्मल स्रोतस्विनी को प्रवाहित करने का यत्न किया।

यह सत्य हैं कि विदेशों में आर्यसमाज के प्रचार का क्षेत्र अत्यन्त सीमित है। हमारे प्रचारक उन्हीं प्रदेशों में जाते हैं जहाँ भारतीय मूल के लोग रहते हैं तथा जिनके बीच हिन्दी भाषा के माध्यम से प्रचार कार्य किया जा सकता है। आज तो भारतीय धर्म तथा संस्कृति, योग, वेदान्त तथा भक्ति के नाम पर अनेक छद्म वेशी लोग यूरोप, अमेरिका आदि पश्चिमी देशों में अपना पाखण्ड जाल फैला रहे हैं जहाँ के लोग भौतिक चाकचिक्यसे आक्रान्त होकर किसी आध्यात्मिक परिवेश में मानसिक शान्ति का अनुभव करते हैं। यह सत्य है कि धर्म और अध्यात्मक के नाम पर आडम्बर एवं पाखण्ड को प्रोत्साहित करनेवाले ये योगी और गुरु भारतीय विचारधारा का अमल-धवल एवं अकलुष रूप विदेशी जनता के समक्ष प्रस्तुत करने में असमर्थ होते हैं अतः यहाँ भी आर्यसमाज की ओर ही, स्वभावतः, दृष्टि जाती है।

आर्यसमाज को अपना विदेश प्रचार का समग्र कार्यक्रम और आयोजन वस्तुवादी दृष्टिकोण पर आधारित करना होगा। विदेश प्रचार हेतु जानेवाले प्रचारकगण सच्ची लगन वाले तो हों ही, उनमें उच्च कोटि का तप, त्याग, कष्ट, सहिष्णुता तथा अदम्य उत्साह भी अपेक्षित है। 'कृण्वन्तोविश्वमार्यम्' तथा 'श्रण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रः' की वैदिक सूक्तियों को सार्थक करनेवाले धर्म प्रचारक जब विदेशों में जाकर आर्य धर्म की गरिमा का आख्यान करेंगे तो स्वामी विवेकानन्द की उस शक्ति की सार्थकता सहज ही हृद्‌यंगम हो जायगी जिसमें उन्होंने कहा था—

मैं उस (वैदिक) धर्म का प्रचार करने के लिए जा रहा हूँ। जिसका कि बौद्ध धर्म एक विद्रोही बालक है तथा ईसाई धर्म जिसकी दूर की प्रतिध्वनि मात्र है।

उपसंहार

उपसंहार में हम प्रसिद्ध अमेरिकन विचारक एण्ड्रू जैक्सन डैविस के उन शब्दों को उधृत करना चाहते हैं जिसमें उसने आर्यसमाज की तुलना उस दिव्य प्रचण्ड अग्नि से की है।

संसार के अज्ञान, अविद्या, पाखण्ड और विषमता को भस्म करने के लिए परिव्राजक दयानन्द द्वारा यह अग्नि उद्दीप्त की गई थी। इस क्रांति ज्वाला को बुझाने का प्रयास अन्य मतावलम्बियों ने तो किया ही, स्वयं हिन्दू धर्म के याजक और पुरोहितगण भी इसके उपशमनार्थ सर्वाधिक प्रयत्नशील रहे। परन्तु काषाय वस्त्र धारी संन्यासी के प्रोज्ज्वल ओज और तेज से दीप्त यह आर्यसमाज रूपी हुताशन निरन्तर वृद्धिगत ही हो रहा है और कोई आश्चर्य नहीं यदि निकट भविष्य में वह संसार के समस्त ताप संताप, पीड़ा और शोक का निवारण कर उसे शान्ति, सुख और मोक्ष का धाम बना देगा।

ऐसा होने पर ही परिव्राट् दयानन्द के दिव्य स्वप्न पूरे होंगे।

प्रो० ओप्रकाश ब्रह्मचारी

एम० ए० (द्वय) विद्यावाचस्पति

प्रस्तुत निबन्ध में आर्यसमाज क्या है ? आर्यसमाज के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द के स्वप्न क्या थे ? और इनकी पूर्ति किस प्रकार हो सकती है ?—ये प्रमुख विचारणीय विषय हैं।

आर्यसमाज क्या है ?

आर्य नाम है श्रेष्ठ का और समाज नाम है मनुष्यों के समूह का। स्वामी दयानन्द श्रेष्ठ जनों के समूह को ही आर्यसमाज मानते थे। उन्होंने "अहं भूमिमददामार्याय" के भाष्य में लिखा है "आर्याः श्रेष्ठ गुण कर्म स्वभाव युक्ता मनुष्याः"। अतः ऋषि की दृष्टि में यह उत्तम विचार और आचरण वाले पुरुषों का समूह है।

आर्यसमाज क्यों ?

स्वामी दयानन्द ने गृह का त्याग सच्चे शिव की प्राप्ति एवं दुःख से निवृत्ति के लिए किया था। इसके लिए उन्होंने घोर तप किया, जंगलों की खाक छानी, संन्यासियों एवं योगियों के चरण धोये और जब उन्हें अभीष्ट प्राप्त हुआ तो वे अति आनन्दित हुए। उन्होंने चाहा कि जो आनन्द उन्हें प्राप्त हुआ है वह संसार के अन्य

लोगो को भी प्राप्त हो। वे लोग भी दुःखों से मुक्ति प्राप्त कर सकें। इस निमित्त उन्होंने आजीवन प्रयत्न किया, घोर कष्ट सहे, यहाँ तक कि सतरह बार विषपान किया। स्वामी दयानन्द एक ऐसे मानव एवं मानव-समाज का निर्माण करना चाहते थे जो जन्म से मृत्युपर्यन्त कभी दुःखी न हो। एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे जिसमें व्यक्ति धर्म पूर्वक अर्थ एवं काम का उपार्जन करते हुए अपने चरम लक्ष्य-मोक्ष-को प्राप्त कर सके। उनके शब्दों में "......धर्मार्थ-काम मोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्न"। इसके लिए उन्होंने आवश्यक समझा था कि एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था को अपनाया जाए जो व्यक्ति को उपर्युक्त उद्देश्य तक पहुँचा सके। ऐसी सामाजिक व्यवस्था को जन्म देने के लिए उन्होंने यह भी आवश्यक समझा कि इसके घटकों के पास निर्भ्रान्त ज्ञान हो जिससे वह अपने को अपनें चारों ओर फैले इस प्रकृति के विस्तार को एवं उसके नियामक तथा सूत्रधार को प्रत्यक्ष कर सके। अपने जीवन-भर की तपस्या ज्ञान एवं योग से प्राप्त ऋतंभरा बुद्धि द्वारा उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला था कि ऐसी सामाजिकव यवस्था वर्णाश्रम व्यवस्था ही हो सकती है एवं ऐसा निर्भ्रान्त ज्ञान एकमात्र ईश्वरीय ज्ञान अर्थात् वेद ही हो सकते हैं।

स्वामीजी के पदार्पण के समय कल्याणी वेद वाणी गड़रियों का गीत समझी जाती थी। प्राणी-मात्र का हितैषी मूढ़ बना था। अतः उन्होंने प्राचीन शैली पर वेद-मत का प्रतिपादन किया। वेदमतानुयायी अपने गौरव, ज्ञान, उच्चादर्श एवं विज्ञान को भूल चुके थे। उन्हे ऋगवेदादि भाष्य भूमिका देकर संजीवनी दी। उन्होंने देखा, वेदमत के पक्षधर वैयक्तिक स्तर पर कुछ प्रयत्न करके किसी प्रकार वेदों का सुरक्षित रख रहे हैं। दूसरी ओर इसके विपक्षी नित्य नई शैली में वेदों पर गलत और पक्षपातपूर्ण आक्षेप नियोजित ढंग से लगा रहे हैं। विदेशी भारत के प्राचीन साहित्य, इतिहास, धर्म और

संस्कृति को नष्ट करने पर तुले हुए थे। एक व्यक्ति कितना और कब तक इनसे लोहा ले सकेगा ?। अतः सामूहिक रूप से इन आक्षेपों का करारा प्रत्युत्तर देने के लिए वेदमत के वैज्ञानिक आधार पर मंडप के लिए तथा भारत के प्राचीन गौरव को पुनः स्थापित करने के लिए महर्षि दयानन्द ने "आर्यसमाज" की स्थापना की।

आर्यसमाज किस लिए अर्थात इसके कार्यक्रम

महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों को देखने से आर्यसमाज की स्थापना के पीछे उनके निम्न स्वप्न जान पड़ते हैं—

१. संसार का उपकारः—मानव शरीर में नाभि, नाभकीय शक्ति (Nuclear Power) से युक्त हो शरीर संतुलन को बनाये रखता है। उसी प्रकार आर्यसमाज के दस नियमों में षष्ठ नियम इसके प्रमुख उद्देश्य का प्रतिपादन करता है। "संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।"

आर्यसमाज किसी देश, काल एवं पात्र विशेष से बंधा न होकर संसार का उपकार करना अपना उद्देश्य मानता है। इस उद्देश्य की पूर्ति का मार्ग उसकी दृष्टि में स्पष्टतः तीन चरणों में पूरा होने-वाला है—शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक। इस क्रम का भी अपना महत्त्व है। शरीर समाज और राष्ट्र की आधारशिला है। प्रत्येक शरीर नीरोग और पुष्ट हो तभी कुछ किया जा सकता है क्योंकि "शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्" अतः सर्वप्रथम शारीरिक पुष्टता आवश्यक है। किन्तु पुष्ट शरीर यदि मन और आत्मा से कमज़ोर है तो यह भी बेकार होगा। पुष्ट शरीर और तेजस्वी आत्मा मात्र व्यक्तिगत रूप से प्रयुक्त होता है तो यह भी बेकार है। इन दोनों का उपयोग समाज के हितार्थ हो। ऋषि ने आर्यसमाज के

नवम नियम में लिखा है "प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।"

२. आस्तिकवाद की स्थापना :—धार्मिक जगत् में ईश्वर के नाम, स्थान और स्वरूप के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी विचारों का बाहुल्य था। ऋषि दयानन्द ने बताया ईश्वर का निज नाम "ओ३म्" स्थान "सर्वत्र" और स्वरूप "निराकार" है। ऐसे ही ईश्वर की उपासना करनी चाहिए। ईश्वर सम्बन्धी इस विचार की स्थापना से ही मानवों में एकता, सद्भाव और आनन्द का विचार हो सकता है।

३. वर्णाश्रम व्यवस्था :—स्वामीजी मानते थे कि स्वस्थ, सबल और सच्चरित्र मानव समाज की स्थापना सच्चे अर्थों में वर्ण और आश्रम व्यवस्था के परिपालन से हो सकती है। वर्ण-व्यवस्था गुण, कर्म, स्वभाव से मानी जाय न कि जन्मना जाति से। इसी प्रकार आश्रम व्यवस्था अत्यन्त परिश्रम करके उत्तम गुणों के ग्रहण और श्रेष्ठ कर्मों के करने की योजना है।

गुण कर्म स्वाभावानुसार वर्ण व्यवस्था एक ओर उठने की प्रेरणा देती है तो दूसरी ओर गिरने का भय दिखाती है। यह प्रेरणा और भय मानव को अपने पथ से विचलित नहीं होने देती। इससे वर्ण संकरता रुकती है। धन, मान, पद और यश में न लिपटे रहें यही आश्रम व्यवस्था सिखलाती है। ब्रह्मचर्य सभी आश्रमों का आधार है। आधार जितना सुदृढ़ होगा शेष आश्रमों का जीवन भी उसी अनुपात में सुखकर होगा।

४. पञ्चमहायज्ञ :—चारों आश्रम का आधार गृहस्थ आश्रम है। जब तक गृहस्थ अपने कर्त्तव्य का उत्तरदायित्व नहीं निभाता तब तक अन्य तीनों आश्रम भी स्थिर नहीं हो सकते। स्वामीजी मानते थे कि अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि के लिए प्रतिदिन

पञ्चमहायज्ञ करना गृहस्थ का परम धर्म है।

(क) ब्रह्मयज्ञ :—ईश्वर के समीपस्थ होने तथा उसके गुण कर्मों को जीवन में उतारने के लिए यह चारों आश्रमों को करणीय है।

(ख) देवयज्ञ :—यह व्यक्तिगत हितों को राष्ट्रहित के लिए आहुत कर देने का महान संदेश देता है।

(ग) पितृयज्ञ:—जीवित माता पिता और आचार्य की सेवा।

(घ) अतिथियज्ञ :—आप्त विद्वान और निष्काम देश भक्तों की सेवा।

(ङ) भूतयज्ञ :—प्राणिमात्र के प्रति सद्भावना देना।

(५) संस्कारों की प्रतिष्ठा :—शरीर, मन और आत्मा जिन कर्मों के करने से उत्तम हो उसे संस्कार कहते हैं। संस्कार सोलह माने गये हैं। संस्कारों की पुनः प्रतिष्ठा से ही आर्य जाति अपने लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष को सिद्ध करते हुए अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त कर सकेगी।

(६) योग विद्या का प्रचार :—शरीर और मन पर विजय प्राप्त करते हुए आत्मा के स्वरूप का दर्शन करने के लिए योग का जीवन में समावेश आवश्यक है। योगी ही एकाग्र-चित्त हो कुशलता-पूर्वक कार्य सम्पादन करता हुआ जीवन में समभाव पैदा करता हैं और ऐसा ही व्यक्ति ईश्वर-प्राप्ति का अधिकारी होता है।

(७) आयुर्वेद की प्रतिष्ठा :—हित् भुक्, ऋत् भुक् और मित भुक् का आश्रय लेते हुए पूर्ण आयु नीरोग कैसे रहें यह आयुर्वेद बताता है। चरक, सुश्रुत जैसे आयुर्वेद और अथर्ववेदीय चिकित्सा विज्ञान पर चिन्तन ओर शोध आवश्यक है। मानव हितकारी,

शरीर और मन के लिए अविकारी तथा सरल और सुलभ चिकित्सा पद्धति का प्रचार स्वामीजी चाहते थे।

८. **संस्कृत विद्या का पुनरुद्धार** :—ईश्वरीय ज्ञान वेद का पठन-पाठन तथा वेद की शिक्षाओं का जनजीवन में प्रचार एवं प्रसार तब तक सम्भव नहीं जब तक संस्कृत का पठन-पाठन बड़े पैमाने पर नहीं होता। सम्पूर्ण प्राचीन वाङ्ग्मय-रूपी "निधि" संस्कृत जाने बिना हस्तगत नहीं हो सकती। ऋषियों की ऋतम्भरा बुद्धि से प्राप्त ज्ञान और उनके अनुभव संस्कृत में ही लिपिबद्ध हैं। भारत के उज्ज्वल भविष्य के निर्माण के लिए प्राचीन भारत के संस्कृत रूपी खजाने से ज्ञान और विज्ञान प्राप्त करना होगा। अत. प्रत्येक व्यक्ति को संस्कृत की शिक्षा अनिवार्यरुप से देनी होगी। इसके लिए पाणिनि और पतञ्जलि की शैली अपनानी होगी जो सरल और सुबोध है।

९. **गोकृष्यादि की रक्षा** :—देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए स्वामी दयानन्द गौ और कृषि को आधार मानते थे। गोकरुणानिधि में उन्होंने लिखा है कि गो दुग्ध, घृत, दधि के सेवन से एक ओर अजय पौष्टिकता मिलती है तो दूसरी ओर खाद्यान्न की खपत घटती है। गो दुग्ध बुद्धि और वीर्यवर्द्धक है। इससे प्राप्त शक्ति सात्विक होती है गोघृत यज्ञीय जीवन का आधार माना गया है। यह आधिभौतिक और आध्यात्मिक तेज पैदा करता है। गोमूत्र उदर विकार की अमोघ औषधि है तथा उत्तम खाद है। गोमय भी खाद के साथ-साथ अनेकानेक विषैले आणविक प्रभाव को नष्ट करता है। गोमूत्र और गोमय के सम्मिलित प्रयोग से अन्न, शाक और फलों में पौष्टिकता तथा माधुर्य आता है। यह भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाते रहते हैं। ऋषि दयानन्द ने यजुर्वेद भाष्य में लिखा है कि मधुर एवं सात्विक अन्न पैदा करने के लिए गोमूत्र और गोमय का ही प्रयोग करना चाहिए। कृषि में आत्मनिर्भरता के लिए गोवंश

की वृद्धि इसलिए भी आवश्यक है कि बैल कृषि कार्य में सहायक तो होते ही हैं भारवाहन में भी सहायता देते हैं। सत्यार्थ प्रकाश में स्वामी जी ने लिखा भी है—

जब आर्यों का राज्य था तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे, तभी आर्यावर्त्त में या अन्य भूगोलस्थदेशों में बड़े आनन्द से मनुष्यादि प्राणि वर्त्तते थे। क्योंकि दूध, घी तथा बैल आदि की बहुतायत होने से अन्न रस पुष्कल प्राप्त होते थे।"

वैज्ञानिकों ने प्रमाणित किया है कि गो के आसपास रहनेवाले के पास यक्ष्मा तथा क्षय रोग नहीं फटकते। वे मानने लगे हैं कि गोसेवक विनयी बन जाता है।

स्वामी दयानन्द की दृष्टि में गाय का इतना अधिक महत्त्व था। अतः उनके अनुयायी भी व्यवहार में गोवंश की वृद्धि के लिए प्रयत्न करे, जैसे समाज के प्रत्येक सदस्य तथा इसके अन्दर चलने वाले गुरुकुल गोपालन शुरू कर ऋषि दयानन्द के स्वप्नों को साकार करें।

गोवध करनेवाले के लिए वेद का विधान है कि "त्वा सीसेन विध्यामि" अर्थात् उसे शीशे की गोली से उड़ा दिया जाए।

१०. शिल्प और कलाकौशल की वृद्धि :—स्वामी दयानन्द ने यज्ञ विधान के सम्बन्ध में शिल्प व्यवहार की चर्चा की हैं जो "रसायन जो कि पदार्थ विद्या उससे उपयोग और विद्यादि शुभ गुणों का दान" पदार्थ विज्ञान जो जगत के उपकार के लिए किये जाते हैं," आदि अर्थ माने हैं। शिल्प विद्या के अन्तर्गत यान और विमान निर्माण भी समाहित है।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के नौविमानादि विद्या प्रकरण में तथा तारविद्या प्रकरण में पानी पर चलने वाले यान, आकाश में उड़ने वाल विमान की चर्चा है।

"पृथिवी से उत्पन्न धातु तथा काष्ठादि के यन्त्र और विद्युत् अर्थात् बिजली इन दोनों के प्रयोग से तार विद्या सिद्ध होती है।"

"तार शुद्ध धातुओं का होना चाहिए और विद्युत् प्रकाश से युक्त करना चाहिए।"

इसी प्रकार ऋषि दयानन्द ने संस्कार विधि के 'शाला निर्माण विधि' में लिखा है।

"जो शाला बहुत बलारोग्य के पराक्रम को बढ़ानेवाली और धनधान्य से पूरित सम्बन्धवाली, जल, दूध, रसादि से परिपूर्ण, पृथिवी परिमाण युक्त निर्मित की हुई, सम्पूर्ण अन्नादि ऐश्वर्यों को धारण करती हुई, ग्रहण करने हारों को रोगादि से पीड़ित न करे वैसा घर बनाना चाहिए।" इस प्रकार के घर कैसे बनें तथा प्राचीन शिल्प विद्या की सिद्धि कैसे हो इसके लिए वेद और प्राचीन साहित्य की सहायता से खोज होनी चाहिए।

इसके अतिरिक्त कला-कौशल का साधारण मनुष्य के जीवन से सीधा सम्बन्ध है। घरेलू और आसपास के कम उपयोगी समानों को रूप, आकार तथा स्थान परिवर्तन से अधिक उपयोगी बनाना कला कौशल का उद्देश्य है। कम पूँजी और अधिक श्रम से बुद्धि-पूर्वक उत्पादित वस्तु हितकारी होते हुए अधिक-से-अधिक मनुष्यों को काम और आराम देती है। ऐसा लगता है स्वामी दयानन्द विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के पोषक थे। कौटिल्य उनकी नज़र में स्पष्ट रूपरेखा देता है। स्वामी दयानन्द के एतद् विषयक विचारों पर गम्भीरतापूर्वक खोज करने की आवश्यकता है। धार्मिक राज्य की स्थापना के समय आर्थिक ढाँचे को भी स्पष्ट करना चाहिए तभी विचारों की पूर्णता प्रदर्शित होगी।

(८.१) धार्मिक राज्य की स्थापना :—ऋषि दयानन्द ने आर्या-

भिविनय में संकलित ईश्वर स्तुति और प्रार्थना के मन्त्रार्थ में अनेक स्थलों पर चक्रवर्ती राज्य की प्राप्ति के लिए प्रार्थना की है। इसकी पुष्टि में निम्न उद्धरण पर्याप्त होगें।

(क) "वैसे सुवर्ण रत्नादि तथा चक्रवर्ती राज्य और विज्ञान, रूप धन को प्राप्त होऊँ तथा आपकी कृपा से सदैव धर्मात्मा होके अत्यंत सुखी रहूँ।" [आर्या० मं० ३]

(ख) "अस्मभ्यं चरियः सुगं कृधि—'हमारे लिए चक्रवर्ती राज्य और साम्राज्य धन को 'सुगम' सुख से प्राप्त कर अर्थात् आपकी करुणा से हमारा राज्य और धन सदा वृद्धि को ही प्राप्त हो। [वहीं मं० ४३]

(ग) हे महाराजाधिराज परब्रह्मन्। 'क्षत्रांय' अखण्ड चक्रवर्ती राज्य के लिए शौर्य, धैर्य, नीति, विनय, पराक्रम और बलादि उत्तम गुणयुक्त कृपा से हम लोगों को यथावत् पुष्ट करें। अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हों, तथा हम लोग पराधीन कभी न हों। [वहीं० मं० ४१ य० ३८/१४]

चक्रवर्ती साम्राज्य का मुख्य उद्देश्य धर्म, न्याय और सदाचार की स्थापना करना है। वैदिक साम्राज्य में शोषण, उत्पीड़न, पक्षपात तथा अन्याय को प्रश्रय नहीं मिलता, वहाँ तो गुण और त्याग की पूजा होती है। संसार के उपकार करने का स्वामी दयानन्द का स्वप्न ऐसे ही धार्मिक चक्रवर्ती साम्राज्य की स्थापना से ही सम्भव है।

१२. शुद्धि कार्य का विस्तार :—आर्य जाति अपनी संकीर्णता अज्ञान और पाखण्ड के कारण दिन प्रतिदिन छोटी होती गई, अछूत के नाम पर अपने ही भाई विधर्मी होने लगे और धीरे-धीरे अनार्यों की संख्या बढ़ने लगी। स्वामीजी ने इस भूल को समझा और इसके शमनार्थ दो कार्य किये, एक तथाकथित अछूतों, पथभ्रष्टों और

असहायों को शुद्ध कर अपने में मिलाया तो दूसरी ओर बहुत दिनों से बने विधर्मियों (?) को शुद्ध कर गले लगाया। भविष्य में ऐसी गल्ती न हो इसके लिए उन्होंने स्त्रियों, शूद्रों तथा अतिशूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकार दिलाया जिससे

"सब मनुष्यों वेदों को पढ़-पढ़ा और सुन-सुना कर विज्ञान को बढ़ा के अच्छी बातों का ग्रहण और बुरी बातों का त्याग करके दुःखों से छूट कर आनन्द को प्राप्त हों। [स० प्र० ३]

इस तरह स्वामी जी का यह कार्य भी चलते रहना चाहिए।

२ स्वामी दयानन्द के स्वप्न पूरे कैसे हों?

स्वामी दयानन्द के स्वप्नों को पूरा करने के लिए आचारवान् विद्वान् कार्यकर्ता चाहिए। यह काम शिक्षण संस्थायें ही कर सकती है। आगेकी पंक्तियों में इन्ही शिक्षण संस्थाओं पर विचार किया जाएगा।

आर्य समाज के इतिहास में शिक्षा प्रचार के दो साधन मिलते हैं। (क) पाश्चात्य पद्धति पर आधारित डी० ए० वी० संस्थाएँ। (ख) प्राचीन भारतीय परम्परा पर आधारित गुरूकुल।

(क) डी० ए० वी० संस्थाएँ:—डी० ए० वी० संस्थाओं की स्थापना हिन्दू साहित्य की रक्षा, वैदिक तथा आर्यसाहित्य की शिक्षा और पाश्चात्य भाषा एवं विज्ञान से अपनी भाषा एवं विज्ञान को पुष्ट करना इन तीन उद्देश्यों को लेकर हुई थी। इन उद्देश्य की प्राप्ति में इन्हें थोड़ी बहुत कृतकार्यता हुई भी। कुछेक अपवाद स्वरूप उदाहरण को छोड़कर डी० ए०वी० संस्थाओं ने आर्यसमाज के लिए समर्थक ही पैदा किये। आर्यसमाज के लिए पंडित, प्रचारक और वेद तथा संस्कृत के विद्वान् पैदा करना इनका उद्देश्य ही नहीं रहा। अतः इसप्रकार के परिणाम की इनसे अपेक्षा रखनी न्याय संगत न होगी। आर्यसमाज की पोषक संस्था के रूप में डी० ए० वी० संस्थाओं की

असफलता प्रामाणित हो चुकी है। अतः अब इनपर धन, बल, बुद्धि और समय लगाना व्यर्थ है।

(ख) गुरुकुल :—आर्यसमाज के लिए विद्वान् और प्रचारक पैदा करने की डी० ए० वी० संस्थाओं को अक्षमता देखकर लगभग १५ वर्ष बाद गुरुकुल की स्थापना प्रारम्भ हुई। वेद के पठन-पाठन, संस्कृत की पुनः प्रतिष्ठा, ऋषि निर्मित पाठ्यविधि के आधार पर अध्यापन, प्राचीन गुरु-शिष्य परम्परा का निर्वाह और यज्ञ की महिमा को स्थापित करने के निमित्त गुरूकुल प्रारम्भ हुए।

गुरुकुल के प्रारम्भिक वर्ष कार्यकर्ताओं के उत्साह, लगन, निष्ठा और सिद्धान्तप्रियता के चलते आर्यसमाज के इतिहास में स्वर्णिम अक्षरों में अंकित हैं। यहाँ के स्नातक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में दीप-स्तम्भ की तरह प्रामाणित हुए। जबतक ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों के अनुरूप समाज बनाने की दिशा में गुरुकुल के अधिकारी सचेत रहे, गुरुकुलों ने वेदभक्त, राष्ट्रप्रेमी सदाचारी और विद्वान् पैदा किये। किन्तु जबसे गुरुकुलों ने सरकारी मान्यता की ओर अपने कदम बढ़ाये तब से इनकी पवित्रता नष्ट हुई, स्तर गिरता गया और अब ये नाम मात्र के गुरूकुल रह गये हैं।

अतः वर्त्तमान गुरुकुलों को ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों के अनुरूप बनाने, उनके द्वारा प्रदर्शित पाठविधि के चलाने, तथा प्राचीन गुरु-शिष्य परम्परा को स्थापित करने के लिए गुकुरुलों में निम्न सुधार अपेक्षित हैं।

(गुरुकुलों के कार्य और प्रशासन-सम्बन्धी विशेष जानकारी के लिए विद्यार्य सभा के अन्तर्गत 'गुरुकुल प्रकरण' देखें।)

पाठ विधि :—

(१) गुरुकुलों में महर्षि दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट अष्टाध्यायी एवं महाभाष्यादि प्राथमिकता से पढ़ाई जाए।

(२) संस्कृत विद्या के अतिरिक्त छात्रों की उम्र और योग्यता का विचार रखते हुए गणित तथा आधुनिक विज्ञान की पढ़ाई हो।

(३) आधुनिक विज्ञान की शिक्षा सूत्रात्मक या श्लोकात्मक शैली से दी जाये न कि वर्तमान विश्लेषणात्मक पद्धति से।

(४) शारीरिक प्रशिक्षण दिया जाए जिसमें प्राणायाम और आसन की विशेष रूप से व्यवस्था हो।

ये विषय सबके लिए प्रवेशिका स्तर तक अनिवार्य हो। प्रवेशिका स्तर तक की शिक्षा ११ वर्षों में पूरी हो।

(५) प्रवेशिका के बाद का पाठ्यक्रम दो प्रकार का होगा (क) **उच्च शिक्षा (ख) हस्तशिल्प कौशल एवं संगीत**—छात्र इनमें से किसी एक में ही योग्यता और अभिरुचि के अनुसार प्रवेश प्राप्त कर सकेंगे।

(६) उच्च शिक्षाभिलाषी छात्रों को स्नातक तक निम्न विषयों का अध्ययन करना होगा:—

(क) वेद के चुने हुए प्रसंग
(ख) वेदाङ्ग के चुने हुए ग्रन्थ
(ग) दर्शनों के चुने हुए विषय
(घ) प्राचीन और नवीन विज्ञान का संक्षिप्त अध्ययन
(ङ) नीतिशास्त्र का अध्ययन जैसे मनुस्मृति, कौटिल्य आदि
(च) आयुर्वेद की सामान्य शिक्षा
(छ) संस्कृत और हिन्दी के अतिरिक्त कोई एक भाषा यह पाठ्यक्रम चार वर्षों का होगा।

(७) हस्तशिल्पकला में प्रवीणता के अभिलाषी छात्रों को निम्न विषयों का अध्ययन करना होगा:—

(क) वेद के चुने हुए प्रसंग

(ख) नीतिशास्त्र का अध्ययन

(ग) अथर्ववेद के शिल्प-विषयक मंत्रों का अध्ययन

(घ) कम पूँजी से चलाये जानेवाले विभिन्न उद्योगों का प्रशिक्षण

(ङ) श्रम के अनुकूल भोग्य पदार्थों की इच्छा का अभ्यास।

(च) आयुर्वेद की सामान्य जानकारी

(८) स्नातक तक पढ़नेवाले सभी छात्रोंको ब्रह्मचर्य का परिपालन, संध्या अग्निहोत्र आदि का दैनिक अभ्यास और इन में विशिष्टता-प्राप्त छात्र को विशेष सम्मान और पुरस्कार दिया जाय।

(९) **स्नातकोत्तर शिक्षा** :—स्नातकोत्तर शिक्षा चार वर्षों की होगी। निम्न विषयों में से किसी एक का चयन किया जा सकता है:—

(अ) वेद

(आ) वेद और विज्ञान

(इ) दर्शन और उपनिषद्

(ई) वेद और दर्शन

(उ) आयुर्वेद (चिकित्सा विज्ञान)

(ऊ) वेद और आयुर्वेद

(ऋ) साहित्य और धर्मशास्त्र

(ए) व्याकरण निरुक्त और ज्योतिष

(ऐ) अर्थशास्त्र राजनीतिशास्त्र और वेद,

उपर्युक्त पाठ्यक्रम के सफल संचालन के लिए गुरुकुल निम्न प्रकार के होने चाहिए:—

(१) प्रवेशिका तक सामान्य अनिवार्य शिक्षा देनेवाले

(२) वेद की उच्चतर शिक्षा के लिए कुछ गुरुकुल।

(३) दर्शन और उपनिषद् की उच्चतर शिक्षा के लिए कुछ गुरुकुल

(४) व्याकरण, निरुक्त और ज्योतिष की उच्चतर शिक्षा के लिए कुछ गुरुकुल

(५) आयुर्वेद की उच्चतर शिक्षा के लिए कुछ गुरुकुल

(६) स्नातक तक की शिक्षा के लिए अलग विभाग रखते हुए

कुछ गुरुकुलों में हस्तशिल्प कौशल के लिए व्यवस्था हो तथा शेष में सामान्य उच्च शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी।

उच्चतर शिक्षा के लिए देश के विभिन्न गुरुकुलों से प्रतियोगिता के आधार पर चुने हुए छात्र विशिष्टता प्राप्त गुरुकुलों में प्रविष्ट हो सकेंगे।

सभी गुरुकुलों में सभी प्रकार की शिक्षा देना सुविधा, प्रबन्ध, आर्थिक सुलभता और विद्वानों की अपर्याप्तता देखते हुए सम्भव नहीं। अतः उपर्युक्त व्यवस्था ही श्रेयस्कर होगी।

गुरुकुलों के संम्बन्ध में कुछ सुझाव

(१) गुरुकुल का अर्थ बालक और बालिकाओं के लिए अलग-अलग गुरुकुल से है।

(२) गुरुकुल के शिक्षक सदाचारी विद्वान् और तपस्वी हों।

(३) जहाँ तक सम्भव हो गुरुकुलों में निशुल्क शिक्षा और भोजनादि का प्रबन्ध हो।

(४) गुरु शुद्ध भाव से और सात्विक बुद्धि से विद्या दान दे और छात्र श्रद्धा, तप तथा ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्या अर्जित करें।

(५) गुरुकुल के प्रत्येक आर्य परिवार से कम-से-कम एक बालक और एक बालिका समर्पित हो जो देश, धर्म और जाति की सेवा करें।

(६) गुरुकुलों का संचालन सात्विक दान से हो।

(७) गुरुकुलों की आत्मनिर्भरता के लिए उनके साथ गोपालन और कृषि की व्यवस्था हो।

(८) कन्या गुरुकुल के लिए अलग से पाठ्यक्रम तैयार हो जिसमें अष्टाध्यायी और महाभाष्य के अतिरिक्त संगीत और आयुर्वेद की शिक्षा अवश्य दी जाये।

(६) कन्या गुरुकुलों की संख्या जितनी अधिक होगी, आर्य-समाज का कार्य भी उतना ही सरल होगा क्योंकि कन्याएँ ही पत्नी, माँ तथा अन्य रूपों में समाज की निर्मातृ होती है।

गुरुकुल के गुरुओं से निवेदन

समान उद्देश्य और समभाव होने पर भी सहकर्मियों में टकराहट मानव स्वभाववश होती ही रहती है और प्रायः इन्हें टालना भी अशक्य हो जाता है। ऐसी स्थिति न आये तो अच्छा है। अगर विकट परिस्थिति आये ही तो।—

(१) सहनशीलता का परिचय देते हुए अपने को स्थिति के अनुकल ढालना चाहिए या स्वेच्छया स्थान त्याग देना चाहिए।

(२) संकटकाल में धैर्य धारण करना लाभप्रद होता है।

(३) क्रोध को वश में करना सात्विकता बढ़ाता है।

(४) चित्त उद्विग्नता की स्थिति में तय करना चाहिए या अकेले भ्रमणार्थ निकल पड़ना चाहिए तब कुछ-न-कुछ प्रकाश प्राप्त होगा।

(५) सार्वजनिक जीवन में उपकार का प्रतिफल पाने की आशा नहीं रखनी चाहिए।

(६) मधुर स्वभावयुक्त आचरण विकट-से-विकट विरोधी को भी शांत कर देता है।

(७) कभी-कभी अपमान की घूंट भी पी लेनी चाहिए।

वैसे तो परमात्मा ही सच्चा पथप्रदर्शक है फिर भी कभी-कभी सांसारिकों के अनुभव से लाभ उठाना चाहिए।

गुरुकुल के स्नातकों का समाज में समायोजन

प्रायः देखा जाता है कि गुरुकुल के प्रतिष्ठित स्नातक भी अपनें पुत्र-पुत्रियों को गुरुकुल में पढ़ाना नहीं चाहते। जिन्होंनें अपनें जीवन के बहुमूल्य १५-२० वर्ष गुरुकुलों में व्यतीत किये हों, वे ही

यदि इनके बारे में ऐसा विचार रखें, तो सोचना पड़ेगा कि कहीं कुछ-न-कुछ त्रुटि है। अब तक यही देखा गया है कि गुरुकुल के स्नातक, उपदेशक, शिक्षक या पुरोहित हुए हैं। कुछेक राजनीति में भी हैं। उनकी योग्यतानुसार आयसमाज उनका लाभ न उठा सका अथवा समाज में वे अपने को ढंग से स्थापित न कर सके। भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का अभाव, आर्यजगत में विद्वानों के सम्मान की कमी और अविद्वानों को पूजा, आर्यसमाज के अधिकारियों का अच्छा व्यवहार न होना तथा पुत्र-पुत्रियों के लिए योग्य वर-वधू की कमी में स्नातकों के साथ जुटे यह कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता रहा है और इसका परिणाम सबके सामने है।

गुरुकुल के स्नातक आर्यसमाज और वेदमत प्रचार के इच्छुक सज्जनों के लिए धरोहर है, निधि हैं, इनका सदुपयोग होना ही चाहिये तभी आर्यजाति अपने प्राचीन गौरव और आदर्श को प्राप्त कर सकेगी। योग्यता के आधार पर स्नातकों का समाज में समायोजन कैसे हो इसके लिए निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं:—

(१) उच्च शिक्षा प्राप्त स्नातकों को उनकी योग्यता और इच्छानुसार यदि वे शिक्षा क्षेत्र में रहना चाहें तो सम्मान के साथ पुष्कल दक्षिणा देकर उनका लाभ गुरुकुल, स्वाध्याय-केन्द्र या शोध-केन्द्र में किया जा सकता है। (इन केन्द्रों का विवरण आगे मिलेगा)

(२) प्रचारक और पुरोहित बनने के इच्छुक स्नातकों को पहले प्रशिक्षण दिया जाए और फिर इन्हें पर्याप्त दक्षिणा के साथ उपर्युक्त कामों में लगाया जाए।

(३) आयुर्वेद के विशेषज्ञ स्नातकों को धर्मार्थ उपसभा

द्वारा स्थापित औषधालयों में उपयुक्त दक्षिणा के साथ सेवा करने का अवसर दिया जाए।

(४) देश के सभी गुरुकुलों से उच्च शिक्षा प्राप्त स्नातकों में से कुछ का चुनाव हो जिन्हें राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिता परीक्षाओं जैसे आई०ए०एस (I.A.S), आई.पी.एस. (I.P S.) और आई.एफ.एस. (I.F.S.) में बैठाया जाए। इसके लिए इस विद्या के उच्चतम अधिकारियों की सेवा अलग से प्राप्त कर स्नातकों को प्रशिक्षित किया जाये।

(५) ऐसे ही कुछ चुने हुए स्नातकों को राष्ट्रीय विज्ञान की शोध प्रतियोगिताओं में सफलता के लिए अलग से प्रशिक्षण दिया जाए।

(६) गुरुकुल के प्रतिष्ठित विद्वान् आर्यसमाजों में उपदेशक, पुरोहित और भजनीक के रूप में धर्मार्य उपसभा की अनुशंसा पर आर्यसमाज द्वारा नियुक्त हों। इन्हें भी प्रचुर दक्षिणा दी जाये।

(७) कला-कौशल में प्रशिक्षित स्नातकोंको समाज में खड़ा होने के लिए आर्यसमाज यथाशक्ति सहयोग और सहायता दे।

(३) आर्यसमाज का नया विधान क्यों ?

आर्यसमाज ने पिछले सौ वर्षों में देश धर्म और जाति के लिए जो कुछ भी किया है वह प्रशंसनीय ही कहा जाएगा। किन्तु आर्यसमाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज के कन्धों पर जो वृहत्तर उत्तरदायित्व और कार्यों की श्रृंखला सौंपी थी उसे देखते हुए यही कहा जा सकता है कि अभी हम 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' के लक्ष्य से वहुत दूर हैं। पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ जी ने अपनी आत्मकथा में स्वीकार भी किया है—

"आर्यसमाज ने स्वामीजी के पीछे जितना भी कार्य किया, प्रचार में जितना भी बल लगाया, जितनी भी समाजें कायम कीं, जितनी भी संस्थाएँ चलाईं, हिन्दुओं की रक्षा की, अन्य मतावलम्बियों का मुख बन्द किया, धर्म प्रचार किया, समाज सुधार चलाया, शुद्धि का द्वार खोला, सब कुछ किया किन्तु संसार का उपकार जैसे महान् संसार व्यापी कार्य के सम्मुख अब तक के समस्त प्रयत्न दरिया में खस-खस के तुल्य हैं।"

यह सब कुछ इसलिए हुआ कि आर्यसमाज ने कार्यों का विभाग करके कार्य-सम्पादन नहीं किया। वेदतीर्थ जी लिखते हैं—"आर्यसमाज को अज्ञों के बहुमत ने चौपट कर डाला और अज्ञों तथा विज्ञों के मिश्रित बहुमत के कारण उसके अनेक आवश्यक कार्य अधूरे रह गए और अधूरे रहेंगे।' वे आगे लिखते हैं—"आर्यसमाज में जब तक उस-उस विषय में उस-उस विषय के तत्त्वज्ञ पुरुषों के बहुमत द्वारा निर्णय होकर कार्य न होगा। समाज की यथार्थ उन्नति नहीं होगी।"

यद्यपि आर्यसमाजियों ने यथाशक्ति और यथामति आर्यसमाज का ही कार्य किया है तथापि दलबन्दी के कारण आर्यसमाज की समष्टि शक्ति का दुरुपयोग ही हुआ है। अतः समय आ गया है कि **आर्यसमाज के नियमोपनियम में परिवर्त्तन हो।**

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश षष्ठ समुल्लास में लिखा है—"यदि एक अकेला सब वेदों का जानने हारा द्विजों में उत्तम संन्यासी जिस धर्म की व्यवस्था करे वही श्रेष्ठ धर्म है, क्योंकि अज्ञानियों के सहस्रों, लाखों, करोड़ों मिलके जो कुछ व्यवस्था करें उसको कभी न मानना चाहिए।" इन पंक्तियों का निष्कर्ष यही है कि वर्त्तमान प्रजातांत्रिक ढंग की चुनाव-पद्धति जिसमें विद्वान् और अविद्वान् दोनों के मत समान महत्त्व रखते हैं स्वामीजी के मत से असंगत

है। स्वामीजी समाज का गठन कैसा चाहते थे यह उनके ग्रन्थों के निम्न उद्धरणों से स्पष्ट होगा :—

(१) वे "सुख प्राप्ति और विज्ञान वृद्धिकारक राजा प्रजा के सम्बन्ध रूप व्यवहार में तीन सभाओं अर्थात् विद्यार्य, धर्मार्य और राजार्य सभाओं की नियुक्ति" आवश्यक मानते थे।

(स० प्र० षष्ठ समु०)

(२) "तीन प्रकार की सभा हो को राजा मानना चाहिए, एक मनुष्य को कभी नहीं।" (भाष्य भूमिका राज्य प्रजा धर्म)

(३) "राजा जो सभापति तदाधीन सभा, सभाधीन राजा, राजा और सभा प्रजा के आधीन और प्रजा राजसभा के आधीन रहे।" (स० प्र० षष्ठ समु०)

(४) "सर्वोत्तम गुणकर्म स्वभाव-युक्त महान् पुरुष हो उसको राज-सभा का पति-रूप मान के सब प्रकार से उन्नति करें।"

(स० प्र० षष्ठ समु०)

(५) "तीनों सभाओं की सम्मति से राजनीति के उत्तम नियम और नियमों के आधीन सब लोग वर्त्तें।" (स० प्र० षष्ठ समु०)

ऊपर के उद्धरणों से तीन बातें स्पष्ट हैं—(क) राज्य-व्यवस्था के लिए तीन सभाएं हों (ख) तीनों सभाओं का सभापति ही राजा और राज्य-व्यवस्थापक हो (ग) राजा प्रजा और सभासद एक दूसरे के आधीन रहें।

इन सभाओं के सभासद् कैसे हों इसके सम्बन्ध में स्वामीजी लिखते हैं—"विद्यासभा, धर्मसभा और राजसभाओं में मूर्खों को कभी भर्ती न करें किन्तु सदा विद्वान् और धार्मिक पुरुषों का स्थापन करें। सभासदों की योग्यता के बारे में लिखते हैं—"पवित्र आत्मा

सत्याचार और सत्पुरुषों का संगी, यथावत्, नीतिशास्त्र के अनुकूल चलने हारा, श्रेष्ठ पुरुषों के सहाय से युक्त बुद्धिमान् हो। वे आगे लिखते हैं—"इस सभा में चारों वेद, न्यायशास्त्र, निरुक्त, धर्मशास्त्र आदि के वेत्ता विद्वान् हों। परन्तु वे ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थ हों।
(स. प्र. ६)

आर्यसमाज के संगठन में तीनों सभाओं और सभापति की स्थापना की जब चर्चा होती है तब कुछ विद्वान् कहते-सुने जाते हैं। यह विधान राज्य-व्यवस्था के लिए है समाज-व्यवस्था के लिए नहीं। ऐसे लोग शायद भूल जाते हैं कि राज्य का निर्माण ही व्यक्ति, परिवार और समाज के संयोग से होता है। व्यक्ति और समाज में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। ऐसे ही समाज और राष्ट्र में। इन सब में अन्तर है केवल संगठन के आकार का। राष्ट्र में राज्य-व्यवस्थापक हैं और समाज इस व्यवस्था की एक कड़ी है। देश के निर्माण और सुधार में जो अपेक्षा राष्ट्र को राज्य से है वही समाज को समाज-सुधारक संस्था से। आर्यसमाज तो संसार का उपकार करनेवाली संस्था है। इसका संगठन तो राज्य के संगठन से भी विशाल और व्यापक होना चाहिए। जिसका कार्यक्रम जितना होगा उसका संगठन और उसकी योजना भी उतनी ही व्यापक होगी। दिव्य दयानन्द के आदर्शों की अनुगामिनी और उत्तराधिकारिणी संस्था आर्यसमाज को भी उतनी ही व्यापक दृष्टि अपनानी होगी जिससे लक्ष्य की प्राप्ति हो सके। अन्त में हम अपना निष्कर्ष वेदतीर्थजी के शब्दों में दुहराना चाहते हैं—"जब तक विद्यासभा, राजसभा और धर्मसभा इस नाम की तीन स्वतंत्र सभाओं का निर्माण होकर कार्य नहीं किया जायेगा, संसार-भर के उपकार की बात दूर रहेगी।"

उपर्युक्त निष्कर्ष और महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों के आलोक में आर्यसमाज के गठन के लिए हम निम्न विधान को प्रस्तावित करते हैं।

प्रस्तावित संगठन का विधान संक्षेप में इस प्रकार है—

आर्यसमाज का संगठन इकाई, प्रान्तीय देशीय और अन्तर्देशीय स्तर पर होगा। इकाई संगठन स्थान विशेष के नाम पर, प्रान्तीय संगठन, प्रान्त विशेष के नाम पर, देशीय संगठन शिरोमणि अमुक देशीय संगठन के नाम पर और अन्तर्देशीय संगठन सार्वदेशिक के नाम से जाना जाएगा। प्रत्येक स्तर पर आर्यसमाज के अन्तर्गत तीन उप-सभाएँ--विद्यार्य्य, धर्मार्य्य और राजार्य्य हुआ करेंगी। इकाई विद्यार्य्य उपसभा अपने से ऊपर की प्रान्तीय विद्यार्य्य उप-सभा, प्रान्तीय विद्यार्य्य उप-सभा अपने से ऊपर की शिरोमणि विद्यार्य्य उप-सभा तथा यह अपने से ऊपर की सार्वदेशिक विद्यार्य्य उप-सभा से सम्बद्ध होगी और इनके निर्देशों को मानेगी। यही क्रम अन्य दो उप-सभाओं के लिए होगा।

सभी स्तर पर आर्यसमाज के प्रधान और मंत्री ऊपर की किसी भी सभा के लिए प्रतिनिधि नहीं होंगे। वे एकाग्रचित्त और स्थिर होकर आर्यसमाज की 'सामान्य सभा' द्वारा स्वीकृत योजनाओं को तीनों उपसभाओं के सहयोग से सम्पन्न करेंगे। सामान्य सभा का अर्थ तीनों उप-सभाओं की संयुक्त सभा से है।

सभी स्तर पर आर्यसमाजों के अधिकारियों का चुनाव दो वर्षों पर होगा। किसी भी कारणवश किसी अधिकारी के न रहने पर उसके उत्तराधिकारी नये चुनाव होने तक उस पद को भी सँभालेंगे।

प्रस्तावित विधान में आर्यसमाजों के प्रधान अनिवार्यतः संन्यासी ही रखने का सुझाव है यद्यपि यह स्वामीजी के मत से मान्य नहीं होगा। फिर भी परिस्थिति विशेष और आपद्-धर्म में लोकोपकारी संन्यासी के लिए ऐसे मानयुक्त और उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यों का निर्वाह संन्यास धर्म की मर्यादा के विपरीत न होगा।

जब सुयोग्य और धर्मात्मा ब्रह्मचारी गृहस्थ और वानप्रस्थ बहुलता से मिलने लगेंगे तब इस नियम में छूट दी जा सकती है।

प्रस्तावित विधान में 'प्रधान'-रूप संन्यासी का निर्वाचन न होकर चयन होगा। क्योंकि प्रधान किसी उप-सभा का सदस्य नहीं होता।

आर्यसमाज के गठन का विधानः—

इकाई समाज का गठन

(१) प्रत्येक समाज में दो तरह की सदस्यता हो—साधारण सभासद् और आर्य-सभासद्।

(२) आर्य-सभासदों को ही मतदान का अधिकार होगा।

(३) आर्य-सभासद् भी योग्यता और रुचि के अनुसार तीन उपसभाओं में लिये जाएँगे—

(क) विद्यार्य्य

(ख) धर्मार्य्य

(ग) राजार्य्य

(४) तीनों उपसभाएँ मिलकर आर्यसमाज कहलाएँगी।

(५) प्रत्येक उपसभा अलग-अलग अपने बीच से एक नेता का चुनाव करेगी जो पदेन आर्यसमाज के उपमंत्री और ऊपर की सभा के लिए प्रतिनिधि भी होंगे।

(६) तीनों उपसभाएँ मिलकर अपने बीच से एक मंत्री का चुनाव करेंगी। यदि कोई उपमंत्री मंत्री चुना जाता है तो उस उपमंत्री का स्थान रिक्त समझा जाएगा और सम्बन्धित उप-सभा को अपना दूसरा नेता चुनना होगा।

(७) प्रत्येक आर्यसमाज के प्रधान अनिवार्यतः संन्यासी होंगे जो सभा के बाहर से लिये जायेंगे।

(८) इसके अभाव में वानप्रस्थी या त्यागी, कर्मठ और विद्वान् सद्गृहस्थ प्रधान हो सकेंगे किन्तु यह छूट केवल इकाई आर्यसमाजों के लिए है, ऊपर की समाजों के लिए नहीं।

इकाई समाज की तरह ही प्रान्तीय, शिरोमणि और सार्वदेशिक स्तर की समाजों एवं उपसभाओं का गठन होगा।

उपसभाओं के आधार पर इकाई आर्यसमाजों के चुनें गये प्रतिनिधि मिलकर प्रान्तीय सभा की उपसभाओं का गठन करेंगे और फिर इनके प्रतिनिधि शिरोमणि उपसभाओं का तथा फिर इनके प्रतिनिधि सार्वदेशिक उपसभाओं का गठन करेंगे।

सभी स्तर पर सभी उपसभाओं के गठन की सूचना (स्थान और समय के साथ) सभी सदस्यों को कार्यालय द्वारा दी जाए।

सभी स्तर पर सभी उपसभाओं के सदस्यों को तत्तत सभाओं के सदस्यों की पूरी सूची कार्यालय द्वारा दी जाए।

सभासदों एवं अधिकारियों की योग्यता

(१) सतरह वर्ष से कम आयु के सज्जन साधारण सभासद और बाईस वर्ष से कम आयु के सज्जन आर्य-सभासद नहीं हो सकते।

(२) आर्यसमाज के साधारण सभासद् वे ही हो सकते हैं जो 'आर्यसमाज के नियम' और सिद्धान्तों में आस्था रखते हों।

(३) आर्य-सभासद् वही होंगे जो आर्यसमाज के मन्तव्यों और सिद्धान्तों पर आस्था रखते हुए इनका पालन करते हों, सदाचारी हों, दैनिक संध्या, अग्निहोत्रादि करते हों तथा मद्यमांसादि अभक्ष्य पदार्थों का सेवन नहीं करते हों।

(४) अधिकारियों में उपर्युक्त गुणों के अतिरिक्त ये गुण अधिक होने चाहिएँ—वे विद्वान्, परोपकारी, निःस्वार्थी, मधुरभाषी,

सत्यवादी, श्रद्धावान् और लगनशील हों।

(५) गुरुकुल के स्नातकों को अधिकारियों के निर्वाचन में प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

सभासदों एवं अधिकारियों के कर्त्तव्य

(१) आर्यसमाज के प्रत्येक सभासद (साधारण और आर्य) का यह कर्त्तव्य होगा कि ईमानदारीपूर्वक आय का शतांश मासिक चन्दा के रूप में अवश्य दें।

(२) परिवार में वैदिक संस्कार स्वयं करें और दूसरों को इसकी प्रेरणा दें।

(३) पंचमहायज्ञों का जीवन में दृढ़ता से पालन करें।

(४) वर्णाश्रम व्यवस्था का सपरिवार पालन करें।

(५) सभासद् एक दूसरे के सुख-दुःख-में यथाशक्ति-सहयोगी हों।

(६) साप्ताहिक सत्संगों में श्रद्धापूर्वक सपरिवार सम्मिलित हों।

(७) यथाशक्ति पारिवारिक सत्संगों का आयोजन कर आस-पास के लोगों को लाभ पहुँचाएं।

(८) शुद्ध आय, शुद्ध आहार, शुद्ध विचार और सादगी को जीवन में प्रश्रय दें।

(९) सभी आर्य अपने बालक-बालिकाओं की शिक्षा गुरुकुलों में ही दिलायें।

(१०) सभी आर्य गोपालन अवश्य करें।

अधिकारियों के अधिकार

प्रधान

(१) सभी स्तर पर प्रधान और मंत्री मिलकर उस स्तर की

सभा के लिए उपप्रधान, कोषाध्यक्ष, पुस्तकाध्यक्ष एवं लेखा निरीक्षक का मनोनयन करेंगे।

(२) सभी स्तर पर प्रधान उस स्तर की सभी उपसभाओं का सभापति होगा।

(३) धन के व्यय में प्रधान की अनुमति आवश्यक होगी।

(४) समाज और सभासद् को नियमानुसार चलाना प्रधान का कर्त्तव्य होगा।

(५) प्रधान की आज्ञा से किसी भी उपसभा की बैठक आहूत करनी होगी।

(६) किसी भी प्रकार के विवाद में प्रधान का निर्णय मान्य होगा।

(७) प्रधान के निर्णय के विरुद्ध प्रान्तीय, प्रान्तीय के विरुद्ध शिरोमणि और शिरोमणि के विरुद्ध सार्वदेशिक सभा के प्रधान को आवेदन दिया जा सकता है।

(८) सार्वदेशिक के प्रधान का निर्णय अंतिम और मान्य होगा।

(९) सार्वदेशिक सभा को चाहिए कि देशीय सरकारों से इसकी वैधानिक मान्यता प्राप्त करे।

(१०) प्रधान की अनुपस्थिति में उपप्रधान उनके अधिकारों का प्रयोग करेंगे।

मंत्री

(१) सभी स्तर की सभी उपसभाओं में समन्वय स्थापित करना उस स्तर के मन्त्री का मुख्य कार्य होगा।

(२) मास में एक बार अंतरंग बुलाना आवश्यक होगा।

(३) उपमन्त्रियों की योजना के अनुरूप स्वयं सहायता देना तथा अन्य सभासदों से सहायता दिलवाना मन्त्री का कार्य होगा।

(४) पत्राचार करना, आय-व्यय लिखना, वार्षिक प्रतिवेदन तैयार करना, सभी उपसभाओं के नेताओं से मिलकर आगामी वर्ष की योजनाओं को तैयार करना।

(५) सभी स्तर पर सभी उपसभाओं के नेता योजनानुसार कर्मठता और ईमानदारी से कार्य करेंगे।

(६) सभी स्तर पर मन्त्री की अनुपस्थिति में क्रमशः विद्यार्य्य, धर्मार्य और राजार्य्य सभा के नेता मन्त्री का कार्य संभालेंगे।

कोषाध्यक्ष

(१) प्रधान की अनुमति से कोषाध्यक्ष धन व्यय करने का प्रवन्ध करेंगे। धन की निकासी प्रधान, मन्त्री और कोषाध्यक्ष के संयुक्त हस्ताक्षर से होगी।

(२) आय के स्रोत को बढ़ाना, आय को उचित ढंग से एकत्र करना कोषाध्यक्ष का कार्य होगा।

पुस्तकाध्यक्ष

(१) पुस्तकालय और वाचनालय का संचालन पुस्तकाध्यक्ष करेंगे।

(२) साहित्य और पत्र-पत्रिकाओं का विक्रय प्रबन्ध पुस्तकाध्यक्ष करेंगे।

आय-व्यय निरीक्षक

(१) समाज के आय-व्यय का निरीक्षण लेखा-निरीक्षक वर्ष में दो बार करेंगे। प्रथम छमाही निरीक्षण में दी गयी उनकी राय कहाँ तक मानी गई, कहाँ तक सुधार हुआ, इसपर अपने विचार लिखते हुए वार्षिक रिपोर्ट (प्रतिवेदन) देंगे।

(२) वार्षिक प्रतिवेदन की प्रति प्रत्येक आर्य-सभासद को मिले इसका प्रबन्ध हो।

सामान्य और अंतरंग सभा

(१) प्रत्येक स्तर पर आर्यसमाज की सभा दो प्रकार की होगी। (क) सामान्य सभा (ख) अंतरंग।

(२) सामान्य-सभा का अर्थ तीनों उप-सभाओं की संयुक्त सभा से है और अंतरंग का अर्थ कार्यकारिणी से है।

(३) अंतरंग सभा के अन्तर्गत प्रधान, उपप्रधान, मन्त्री, तीन उपमन्त्री, कोषाध्यक्ष, पुस्तकाध्यक्ष, और लेखानिरोक्षक (कुल मिलकर नौ) होंगे।

(४) सामान्य-सभा वर्ष में कम-से-कम तीन बार बैठेगी। यह देखने के लिए की योजनानुरूप प्रगति कैसी है।

(५) सामान्य-सभा सभी प्रकार की योजनाओं, कार्यक्रमों और आय-व्यय की अंतिम स्वीकृति देगी।

(६) अंतरंग सभा मास में कम-से-कम एक बार बैठेगी।

(७) तीनों उपसभाओं की योजनाओं को समन्वयात्मक दृष्टि रखते हुए अपनी सहमति देना अंतरंग का कर्त्तव्य होगा।

(८) अंतरग अपनी योजना को स्वीकृति सामान्य सभा से लेगी और प्रगति की रिपोर्ट भी उसे ही देगी।

योजना बनाने की विधि

(१) वर्ष के प्रारम्भ में प्रत्येक स्तर पर उपसभाएँ अल्प-कालिक और दीर्घकालिक योजनाएँ अलग-अलग तैयार करेंगी। इस योजना को अपने नेता के माध्यम से अंतरंग में और फिर सामान्य सभा में भेजकर स्वीकृति लेगी।

(२) यह बराबर ध्यान में रखा जाए कि कोई भी योजना अपने से ऊपरवाली उपसभा की योजना का सहायक सिद्ध हो विरोधी नहीं।

सार्वदेशिक

सर्वतन्त्र सिद्धान्तों के आधार पर सार्वभौम धार्मिक राज्य स्थापित करने के लिए सार्वदेशिक शिरोमणि सभा के कार्यों को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर करेगी।

उपसभाओं के कार्य

आर्यसमाज के अन्तर्गत तीनों उपसभाओं के सभी स्तर पर निम्नलिखित कार्य होंगे।

विद्यार्य्य उपसभा के कार्य

विद्यार्य्य उपसभा का मुख्य उद्देश्य शिक्षा प्रसार की व्यवस्था करना होगा। "शिक्षा" ऐसी हो जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता और जितेन्द्रियता बढ़े।

अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए शिरोमणि विद्यार्य्य उपसभा निम्न कार्य करेगी—(अ) शिक्षण संस्था, (आ) स्वाध्याय केन्द्र, (इ) शोध केन्द्र, (ई) अध्यात्म केन्द्र स्थापित करेगी।

(अ) शिक्षण संस्था

(१) उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए सारे देश में एकमात्र गुरुकुलों की शृंखला स्थापित करे।

(२) जितने भी गुरुकुल हैं या खुलें विद्यार्य्य उपसभा की देख-रेख में हों।

(३) सभी गुरुकुलों के पाठ्यक्रम और उपाधियाँ एक जैसी हों, इसपर शिरोमणि विद्यार्य्य उपसभा विशेष ध्यान देगी।

(४) शिक्षार्थियों को निःशुल्क शिक्षा, भोजन और वस्त्र मिले इसकी यथाशक्ति व्यवस्था विद्यार्य्य उपसभा करे।

(आ) स्वाध्याय केन्द्र

(१) देश में एक या अधिक स्वाध्याय केन्द्र की स्थापना हो जहाँ भोजन, वस्त्र, आवास और चिकित्सा की मुफ्त व्यवस्था हो। इतना ही प्राप्त कर देश-भर के साधु, सन्त और विद्वान् यहाँ आकर स्वाध्याय करें। स्वामी दयानन्द के मन्तव्यों की पुष्टि में शोधपूर्ण प्रामाणिक ग्रन्थ तैयार करें। इसके लिए ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका के सभी प्रकरण अलग-अलग विषय हो सकते हैं।

(२) यहीं से ऋषि शैली पर विद्वान् योगियों द्वारा वेदभाष्य पूरा किया जाए।

(३) वेदमत विरोधियों के मतों का तार्किक और प्रामाणिक उत्तर तैयार कराया जाए।

(४) ऋषि शैली पर ब्राह्मण, उपवेद, वेदाङ्ग, दर्शन, उपनिषद् और अन्य ग्रन्थों (जिसकी चर्चा ऋषि पठन-पाठन विधि में की है) का प्रामाणिक भाष्य तैयार कराया जाए।

(५) ऋषि प्रणीत एवं इनके समर्थन में लिखे गए ग्रंथों को गुरुकुल तो अपनाएँ ही, वर्त्तमान शिक्षा-व्यवस्था में उपयुक्त स्थान दिलाने की भी व्यवस्था विद्यार्य्य उप-सभा करे।

(६) विद्यार्य्य उप-सभा सारे देश में समृद्ध पुस्तकालयों की शृंखला खड़ी करे।

(इ) शोध केन्द्र

(१) यहां वेद एवं संस्कृत के पंडित तथा आधुनिक विज्ञान के विद्वान् मिलकर शोध करेंगे।

(२) शोधक का मुख्य उद्देश्य वेद के आधार पर वैज्ञानिक अनुसंधान करना होगा।

(३) इसके निमित्त शोध केन्द्र में समृद्ध एवं आधुनिक उप-करणों से सुसज्जित प्रयोगशाला हो।

(४) शोध मुख्यतः पदार्थ विद्या, रसायन विद्या एवं आयुर्वेद (शरीर एवं चिकित्सा विज्ञान) से सम्बन्धित हों।

(५) यज्ञ (जिसकी व्याख्या आर्योद्दे० ४७ एवं स्वमन्तव्या० २८ में है) पर वैज्ञानिक अनुसंधान हो।

(ई) आध्यात्म केन्द्र

(१) देश के सुरम्य और शांत क्षेत्र में एक आध्यात्मिक केन्द्र खोला जाए जहां योग की साधना, वेद की सुरूचिपूर्ण कथाएँ और जीवन को उन्नत करने के लिए प्रेरणादायक, स्फूर्तिदायक प्रवचनों की अविरल धारा प्रवाहित हो।

(२) योग साधना की ऋषि सम्मत क्रियात्मक विधि का निर्माण हो।

(३) उपर्युक्त योग साधना विधि के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक प्रदर्शन तथा प्रशिक्षण के लिए कई योग मण्डलियाँ हों जो देश में घूम-घूमकर योग विद्या का प्रचार करें।

(४) देश के प्रत्येक भाग से आये हुए साधकों के आवास एवं भोजन की निःशुल्क व्यवस्था हो।

देश की प्रान्तीय एवं इकाई स्तर की सभी विद्यार्य्य उपसभाएँ, शिरोमणि विद्यार्य्य उपसभा के उपर्युक्त कार्यों में तन, मन, धन से सहयोग करेंगी।

धर्मार्य्य उपसभा के कार्य

धार्मिक प्रचार करना इसका मुख्य उद्देश्य होगा।

शिरोमणि धर्मार्य्य उप-सभा को शिरोमणि विद्यार्य्य उप-सभा के सहयोग से निम्नलिखित कार्य करने होंगे।

(१) स्वाध्याय केन्द्र से सहयोग प्राप्त कर वेद मत के प्रचार

और प्रसार के लिए सुदूर गाँवों तक वेदवाणी की गूंज पहुँचाना।

(२) प्रचार की दृष्टि से देश को छः भागों में बाँटा जाय एवं छः प्रचार केन्द्र स्थापित हों।

(३) प्रत्येक केन्द्र में संस्कृत हिन्दी के अतिरिक्त स्थानीय भाषा के जानकार प्रचारकों द्वारा सरल और सुबोध भाषा में आर्य मन्तव्यों के प्रचार का प्रबन्ध हो।

(४) इन प्रचार केन्द्रों से वेदमत विरोधियों को शास्त्रार्थ की चुनौती दी जाए।

(५) प्रचार के सभी साधनों का उद्देश्य तर्क से विरोधियों की वाणी पर विजय प्राप्त करने के अतिरिक्त हृदय पर भी विजय पाना हो।

(६) समयानुसार उपनियमों में परिवर्तन या संशोधन का अधिकार शिरोमणि धर्मार्य्य उप-सभा का होगा जिसकी अन्तिम स्वीकृति शिरोमणि सभा की सामान्य बैठक करेगी।

(७) धर्मार्य्य उप-सभा यह भी देखेगी कि सम्पूर्ण देश में संध्या, अग्निहोत्र एवं संस्कार की शास्त्रसम्मत एक विधि का निष्ठा पूर्वक पालन हो।

(८) आयुर्वेद की पुनः प्रतिष्ठा के लिए देश में औषधालयों की शृंखला खड़ी करे जिसमें गुरुकुल के चिकित्सा विज्ञान के स्नातकों को सेवा करने में प्राथमिकता दी जाए।

(९) आध्यात्म केन्द्र से सहयोग प्राप्त कर योग प्रशिक्षण के लिए 'योगसाधना शिविर' का अपने-अपने क्षेत्र में आयोजन करना।

(१०) संस्कृत भाषा के प्रचार के लिए शिविर लगाना।

(११) विभिन्न अवसरों पर अपने मन्तव्यों एवं सिद्धान्तों के प्रचार एवं प्रसार के लिए वेदप्रचार सप्ताह एवं उत्सवों का आयो-

जन करना।

(१२) शुद्धि कार्य चलाना।

उपर्युक्त कार्यों का विवरण शिरोमणि धर्मार्य्य उप-सभा तैयार कर देश के सभी प्रान्तीय और इकाई धर्मार्य्य उप-सभा को प्रेषित करे। योजना तयार करते समय सारे देश की आवश्यकताओं का ध्यान शिरोमणि सभा रखे।

प्रान्तीय और इकाई धर्मार्य्य उप-सभाएँ उपर्युक्त कार्य अपनी क्षमता के अनुरूप करते हुए शिरोमणि धर्मार्य्य उप-सभा को सहयोग दें।

राजार्य्य उप-सभा के कार्य

धार्मिक राज्य की स्थापना इसका मुख्य उद्देश्य होगा।

इस उद्देश्य की प्राप्ति के निमित्त शिरोमणि राजार्य्य उपसभा निम्न तीन कार्य करेगी। (क) राज्यनिर्माण एवं व्यवस्था चलाना। (ख) आर्यवीर दल का गठन और (ग) सेवाकार्य।

राज्यनिर्माण एवं व्यवस्था

(१) वेद और प्राचीन साहित्य के आधार पर धार्मिक राज्य की स्थापना हेतु राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक आदर्शों की घोषणा करना शिरोमणि राजार्य्य उप-सभा का कार्य होगा।

(२) वेद सम्मत धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक मान्यताओं का निश्चयीकरण शिरोमणि विद्यार्य्य सभा, शिरोमणि धर्मार्य्य सभा एवं शिरोमणि राजार्य्य-सभा की संयुक्त सभा अर्थात् शिरोमणि सभा की सामान्य सभा करेगी।

(३) सक्रिय राजनीति में प्रवेश करने के पूर्व राजार्य्य उप-सभा ईमानदार, सदाचारी और त्यागी कार्यकर्त्ताओं की एक लम्बी सेना खड़ी करे।

(४) सक्रिय राजनीति में प्रवेश करने के इच्छुक योग्य, सदाचारी और विद्वान् व्यक्ति राजार्य्य उपसभा के मंच से चुनाव लड़ें।

(५) राजार्य्य उपसभा भी सक्रिय राजनीति में ऐसे ही लोगों को खड़ा करे जो (अ) प्राचीन राजनीति शास्त्रज्ञाता हों (आ) मधरभाषी हों (इ) निरभिमानी (ई) परोपकारी (उ) धैर्यशील और (ऊ) विद्वान् हों।

आर्यवीर दल का गठन

(१) आर्यवीर दल का मुख्य उद्देश्य देश के लिए सच्चरित्र, आस्तिक, बलवान् और विचारवान् युवक तैयार करना है।

(२) ऐसे युवकों को आर्यसमाज के सम्पर्क में लाना इसका कार्य होगा।

(३) अज्ञान, अन्याय और अभाव से लड़नेवाले युवकों को संगठित करना।

(४) युवकों में ब्रह्मचर्य और योगाभ्यास द्वारा शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बल, तेज पैदा करना।

(५) आर्यवीर दल सेवा कार्य अनवरत रूप से करे।

सेवा कार्य

(१) आकस्मिक विपत्ति में जनता की सेवा करना जैसे बाढ़, अकाल, सूखा, भूकम्प, अग्निकाण्ड आदि।

(२) दीन-दुखियों की सेवा करना।

प्रचार शैली

धार्मिक जगत में प्रचार कार्य के दो उद्देश्य होते हैं। वे हैं (क) अपनें मन्तव्यों का प्रचार (ख) विरोधीमत का खण्डन।

अब तक आर्यसमाज अपना ज्यादा समय विरोधी मत खण्डन में ही लगाता रहा है जिसका फल यह हुआ कि सर्व साधारण के मस्तिष्क में आर्यसमाज क्या नहीं मानता है, इसकी ही छाप है, आर्यसमाज क्या मानता है इसकी नहीं। कभी इस प्रकार की प्रचार शैली आवश्यक रही होगी किन्तु आज उससे भी ज्यादा आवश्यक अपनी बात करने की है। स्वामी दयानन्द, आर्यसमाज और वेदमत क्या है इसकी स्पष्ट रूपरेखा समाज को देनी होगी। सेना के आगे बढ़ने के लिए आगे-आगे रास्ता साफ करने का कार्य सेना का गुप्त विभाग करता है वैसे ही वेद मत के प्रचार के लिए मार्ग प्रशस्त करने में खण्डनात्मक प्रचारशैली ने अपनी भूमिका निभाई है। मार्ग प्रशस्त हो जाने पर सेना लक्ष्य को ओर बढ़ती है, वैसे ही अब आर्यसमाज को अपने वास्तविक लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिए मण्डनात्मक प्रचारशैली को अपनाना चाहिए। हमें निषेधात्मक प्रक्रिया के साथ विधेयात्मक प्रक्रिया भी देनी होगी। सत्यार्थ-प्रकाश के मात्र अंतिम चार समुल्लासों पर बोलना ही पर्याप्त नहीं, शुरू के दस समुल्लासों पर भी सप्रमाण सोदाहरण बोलना होगा करके बताना होगा तभी हमारे कहने का प्रभाव होगा।

उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं :—

(१) वर्ष में प्रचार कार्य दो बार (वेद-कथा और वार्षिकोत्सव) की अपेक्षा कम-से-कम चार बार हो।

(२) किसी भी प्रचार-कार्य में कार्यक्रम 'शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति' के लक्ष्य को ध्यान में रखकर तैयार किया जाए।

(३) शारीरिक उन्नति के अन्तर्गत शाकाहारी और ब्रह्मचर्य-व्रती शरीर कैसे पुष्ट होते हैं, इसका प्रदर्शन करना और कराना

होगा।

(४) शारीरिक प्रदर्शन में धनुर्वेद, ताम्बे के चादर को कागज की तरह फाड़ना, सीने पर पत्थर तुड़वाना, मोटरगाड़ी रोकना आदि प्रमुख हैं।

(५) आर्यसमाज से बाहर के व्यक्ति भी जो शाकाहारी और ब्रह्मचर्यव्रती है तथा जिसने राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की है वैसे लोगों को सम्मान और श्रद्धा के साथ अपने मत की पुष्टि में मंच से कहलवाना चाहिए।

(६) आत्मिक उन्नति के लिए खुले मंच से योग और अध्यात्म का प्रचार हो।

(७) अध्यात्म केन्द्र अथवा अन्यत्र से योगियों को अपने-अपने क्षेत्र में बुलाकर योग-शिविर लगवाना।

(८) वर्त्तमान सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का उपाय बताना जैसे दहेज, बाल विवाह, अनमेल विवाह, मृतक श्राद्ध, जन्मना जाति प्रथा आदि।

(९) उपर्युक्त कुरीतियों को तोड़नेवाले युवक-युवतियों का सार्वजनिक मंच से अभिनन्दन हो।

(१०) युवक और युवती जो बिना दहेज के जातीय अथवा अन्तर्जातीय विवाह करने के इच्छुक हों उन्हें आर्यसमाज सहयोग दे तथा इस कृत्य को सार्वजनिक रूप से सम्पन्न करें।

इसके अतिरिक्त निम्नांकित सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बुराइयों का विधेयात्मक विकल्प देना होगा, जिसकी रूपरेखा इस प्रकार हो सकती है :—

(१) मूर्तिपूजा के बदले महर्षि दयानन्द प्रदर्शित संध्या का स्वरूप, जीवन में इसके लाभ और अष्टांगयोग की सिद्धि इससे कैसे

होती है, बताना होगा।

(२) मृतक श्राद्ध के बदले जीवित माता-पिता और आचार्य की सेवा ही श्राद्ध है समझाना होगा। इनकी सेवा से आयु विद्या, यश और बल की वृद्धि क्यों और कैसे होती है सोदाहरण समझाना होगा।

(३) प्रारब्ध की अपेक्षा पुरुषार्थ की महत्ता बतानी होगी। भाग्य पर आश्रित फलित ज्योतिष को मानकर हमने क्या-क्या खोया तथा हमारे प्राचीन महापुरुषों ने पुरुषार्थ का अवलम्बन कर क्या-क्या पाया, इसे इतिहास से सिद्ध करना होगा। इसके अतिरिक्त महापुरुषों और क्रान्तिकारी वीरों का जीवन वेद की किन शिक्षाओं से अनुप्राणित था इसे वेद मंत्रों के आधार पर बताना होगा।

इसके अलावा आर्यसमाज के कार्यक्रमों के अन्तर्गत जिन विषयों पर प्रकाश डाला गया है उन्हें भी विधेयात्मक शैली में सरल और सुबोध भाषा में जनता तक पहुंचाना होगा।

आर्यसमाज का प्रचार अभी तक शहरों तक ही सीमित है गाँवों में भी स्वामी दयानन्द की सीख पहुंचानी होगी।

प्रचार के अन्य तरीकों में वाद-विवाद, निबन्ध प्रतियोगिता तथा साहित्यिक प्रचार तथा साहित्य भेंट जैसे कार्यक्रमों को आर्य समाज चलाए जिसमें विद्यालय और महाविद्यालय के छात्रों को आमंत्रित करे तथा इन्हें प्रोत्साहन के लिए पुरस्कृत भी किया जाए।

वार्षिकोत्सव और वेद-प्रचार

वार्षिकोत्सव और वेद प्रचार के अवसरों पर प्रचार कार्य के लिए आए योगियों उपदेशकों तथा अन्य विद्वानों का अधिक से अधिक लाभ उठाने के लिए निम्न बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए :—

(१) विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में छात्रोपयोगी एवं चरित्र-निर्माण-सम्बन्धी वेद की बातें बताई जाएँ।

(२) छात्रों को विश्व की वर्त्तमान समस्याओं के प्रति आर्य-समाज का वेद मूलक वैज्ञानिक दृष्टिकोण समझाया जाए।

(३) आर्यसमाज के विभिन्न कार्यक्रमों के अन्तर्गत विभिन्न रुचि के लोगों के लिए अलग-अलग विचार गोष्ठियों का आयोजन हो, जिसमें उक्त विषयों के विद्वान् अन्य लोगों के साथ विचार-विमर्श करें। जैसे शिक्षक एवं प्राध्यापक, अधिवक्ता, चिकित्सक तथा किसान की गोष्ठी हो।

(४) ऐसी विचार गोष्ठियों का मुख्य उद्देश्य समाज के विभिन्न वर्गों को आर्यसमाज के सम्पर्क में लाना और उनके कर्त्तव्यों का मार्ग निर्देश करना।

(५) सार्वजनिक व्याख्यान आदि के अतिरिक्त छात्रों और महिलाओं के लिए कुछ विशेष कार्यक्रम हों जिसमें छात्रों के लिए ब्रह्मचर्य, प्राणायाम की शिक्षा एवं महिलाओं के लिए गृहकार्य और शिल्प की शिक्षा दी जाए।

(६) प्रचार के सभी कार्यक्रमों को रुचिकर और आकर्षक बनाने के लिए संगीत और कविता की अच्छी व्यवस्था हो।

(७) इन प्रचार के अवसरों पर क्रियात्मक योग की शिक्षा के लिए 'योगसाधना शिविर' अवश्य लगाये जाए।

(८) प्रत्येक प्रचार के समय आर्यवीर दल शारीरिक व्यायाम, आसन, शस्त्र और अस्त्र संचालन का प्रदर्शन करे।

(९) हस्तशिल्प कला गुरुकुल में बनी वस्तुओं का प्रदर्शन हो। ऐसे प्रदर्शन का उद्देश्य इन वस्तुओं के लिए बाज़ार निर्माण करना भी होगा।

(१०) ऐसे अवसरों समाज के प्रबुद्ध वर्ग को (गोष्ठियों में) आर्यसमाज की ओर से साहित्य भेंट दिया जाए।

साप्ताहिक सत्संग

आर्यजन बराबर मिलते रहें, एक दूसरे की सुधि लेते रहे, आपस में सद्भाव बना रहे, सिद्धान्तों का अनुशीलन होता रहे, सभ्यों का व्यवहार हमारे अन्दर आता रहे आदि कारणों से साप्ताहिक सत्संगों की काफ़ी उपादेयता है। एक दूसरे के सुख-दुख: से परिचित रहें तथा इन अवसरों पर परस्पर उपकारक हों तो आर्य जाति शीघ्र ही आनन्दित हो जाएगी।

वर्तमान समय में साप्ताहिक सत्संग अरुचिकर और बिना आकर्षण के लगते हैं इनमें सुधार के लिए निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं :—

(१) पुरुष और स्त्री, लड़के और लड़कियां सभी साप्ताहिक सत्संगों में अवश्य आया करें।

(२) ऐसे मिलन से नई और पुरानी पीढ़ी के बीच सम्पर्क बना रहता है जिससे सहनशीलता, सभ्यता, सदाचार और हृदय की विशालता बढ़ती है।

(३) इन सत्संगों में मंजे हुए विद्वानों और भजनिकों को ही बोलने का अवसर दिया जाए अधकचरों को नहीं।

(४) युवा पीढ़ी को महापुरुषों और क्रान्तिकारियों की जीवनी के शिक्षाप्रद प्रसंग, प्रेरणादायक कहानियों, घटनाओं एवं कविताओं को कहने का अवसर दिया जाए।

(५) सत्संगों के बाद प्रसाद वितरण की अनिवार्य व्यवस्था हो।

(६) बिना आर्थिक बोझ बढ़ाये पारिवारिक सत्संगों को प्रच-

लित किया जाए।

(७) युवा पीढ़ी में वक्तृत्व शक्ति बढ़ाने के लिए अलग से साप्ताहिक वाद-विवाद प्रतियोगिता प्रारम्भ की जाए।

(८) पुराने कार्यकर्त्ताओं से प्रेरणा ली जाए तथा उनके प्रति श्रद्धा, सम्मान और कृतज्ञता का भाव जागृत किया जाए।

(९) सत्संगों में अनुपस्थित रहने वाले सभासदों की सुधि लेते रहनी चाहिए एवं सत्संग में सम्मिलित होने की प्रेरणा देते रहनी चाहिए।

योजना का आर्थिक पक्ष

किसी भी प्रकार की योजना हो अर्थ के बिना उसका सफल कार्यान्वयन नहीं हो पाता। यद्यपि माँगे गए निबन्ध में इस पक्ष की कोई चर्चा नहीं है फिर भी अर्थ की महत्ता को देखते हुए निम्न सुझाव दिये जाते हैं :—

(१) शिरोमणि सभा के अन्तर्गत एक कोष कायम किया जाए जिसका ५० प्रतिशत विद्यार्य्य उपसभा, २० प्रतिशत धर्मार्य्य उप-सभा और २० प्रतिशत राजार्य्य उपसभा तथा १० प्रतिशत शिरो-मणि सभा अपने लिए व्यय करें।

(२) प्रान्तीय सभा भी इसी प्रकार एक निधि कायम करे। जिसका २५-२५ प्रतिशत तीनों उपसभाओं को तथा अपने लिए १५ प्रतिशत व्यय करे।

(३) इकाई आर्यसमाज भी प्रान्तीय सभा की तरह व्यय करे।

(४) प्रत्येक समाज एवं सभा अपनी आय का १० प्रतिशत अपने से ऊपर की सभा को भेजे।

उपर्युक्त कोश (निधि) के लिए आय के स्रोत निम्न हो सकते हैं :—

(१) मासिक चन्दा।

(२) साप्ताहिक सत्संग के दिन प्राप्त चन्दा।

(३) संस्कार से प्राप्त दान तथा विशेष पर्व पर प्राप्त दान।

(४) प्रचार कार्य के समय अपील से प्राप्त आय।

(५) समाज की सम्पत्ति से प्राप्त आय।

(६) गुप्त दान (वर्ष में दो बार सात-सात दिनों का)।

ऊपर दी गई योजना के अनुसार यदि ईमानदारी और निष्ठा से कार्य हो तो महर्षि दयानन्द के स्वप्नों का आर्यसमाज बन सकता है। तथा आर्यसमाज स्वयं प्रगतिशील संस्था के रूप में प्रमाणित हो सकता है।